धन
धन्नो
अणगार

युगप्रधानाचार्यसम पं.पू.
श्री चन्द्रशेखरविजयजी म.सा.

समर्पण

DEDICATED

उस रत्नीकुक्षी माता और पिता को, जिन्होंने ऐसे मुनिवर को बचपन में संस्कार दिए

उस अतिलगाव वाले मामा को, जिन्होने ऐसे मुनिवर को बहुत प्यार दिया, उनकी सभी इच्छाएँ पूर्ण करने के सभी प्रयत्न किए

उस याकिनी महत्तरा जैसी साध्वीजी को, जिन्होने ऐसे मुनिवर को प्रेरणा करके, वैराग्य की ज्योत जला के संयमी स्वीकारने का शीघ्र पुरुषार्थ करवाया

उस सद्गुरु परंपरा को, जिन्होने ऐसे मुनिवर को दीक्षा देकर संयम के सुक्षमतम संस्कार देकर उन्हे महासंयमी बनाया

उस गुरुराज आचार्य महाराजाओं को, जिन्होने खुद के अपयश की थोडी भी चिंता किए बिना ऐसे मुनिवर को मजबुत पढाई के लिए (खुद सक्षम होने के बावजूद भी कारण के वश से) दूसरे साव छोटे साधु की निश्रा में उन्हें पाँच-पाँच साल तक रखा

उस महासंयमी मुनिवर, जिन्होंने मेरे स्वाध्याय -विद्वता के अहंकार को काबु में लाने के लिए और मुझे 'धन्नाजी' की सज्झायमें मस्ती उत्पन्न कराने में महत्त्व की भूमिका बजाई

मुनि गुणहंस वि.
वि.सं. 2073
मृगशीर्ष सुद 1
साहुकारपेट, चेन्नई

धन धन्नो अणगार

वर्तमान काल में 'धन्नाजी' जैसे प्रतीत
एक मुनिवरजी की जीवन
।। आत्मकथा ।।

प्रथम आवृत्ति : पौष दशमी, संवत 2073

नकल : 1000

लेखक

मुनि. गुणहंस वि.

प्राप्ति स्थल

नरेश भाई
373, मिन्ट स्ट्रीट, राजेन्द्र काम्पलेक्स
(महाशक्ति होटल के पास)
चेन्नई-79. फोन : 9841067888

मनोज जैन
नं. 7, पेरुमाल मुदली स्ट्रीट, चेन्नई-79.
फोनः 9840398344

विनीत जैन
नं. 1, पल्लीयप्पन स्ट्रीट,
(अन्ना पिल्लै स्ट्रीट के पास) चौथा माला,
चेन्नई-79. फोनः 9566292931

प्रकाशक

कमल प्रकाशन ट्रस्ट
102-ए, चन्दनबाला कोम्पलेक्स, आनंद नगर,
पोस्ट ओफिस के सामने, भट्ठा, पालडी, अहमदाबाद - 7.

Typing and Editing by
पार्श्व ऑफसेट
राजकोट

Design and Printed by:

Divyam Graphics
YOUR IMAGINATION, OUR CREATION
9884232891

Chennai. Ph : 044-42140317/9884232891

प्रस्तावना

धन धन्नो अणगार

- वह मम्मी ऐसी थी कि, जो नीचे खेलते हुए बेटे को ऊपर से जोर-जोर से आवाज देकर बुलाती थी !, 'बेटा ! सूर्यास्त होने आया है, ! जल्दी चल, चोविहार कर ले ।' और बहुत मेहनत के बाद भी जब खेलने के शौक के कारण बेटा घर पर लेट पहुँचा, तो बेटे को भूखा रखती, परंतु रात को तो नहीं खिलाती ।

- वह मम्मी ऐसी थी कि, बेटा खाना खा रहा हो, परंतु देर होने से खाना खाते-खाते ही सूर्यास्त होने आए, तब थाली को खींच लेती थी, पर रात को खाने नहीं देती थी ।

- वह मम्मी ऐसी थी कि, बेटे को उपाश्रय में साधु-साध्वीजी भगवंतों को गोचरी के लिए विनंती करने अवश्य भेजती थी ।

- वह मम्मी ऐसी थी कि, उपाश्रय में आए हुए हर एक साधु भगवंत के पास बेटे को साथ में लेकर जाती थी और कहती थी कि, 'म.सा.! इसे दीक्षा के लिए तैयार कीजिए । हमको इसे संसार में नहीं रखना है ।'

- वह मम्मी-पप्पा ऐसे थे कि, बेटे ने भागकर दीक्षा ली, उसके बाद उसी के पास पहुँचकर सीधी एक ही बात कहि कि, 'सिंह की तरह निकले हो तो सिंह के जैसे पालकर बताना । हम या कोई भी स्वजन आपको मिलने नहीं आएँगे तो उनका स्मरण भी मत करना ।'' और सचमुच दीक्षा के १०० दिन तक मिलने ही नहीं गए । बडी दीक्षा में भी नहीं गए !, हाँ ! दीक्षा के दूसरे ही दिन धामधूम से पगले करवाएँ थे ।

- वह पप्पा ऐसे थे कि, 'मेरे बेटे को स्वजनों की याद तो नहीं आती ना? कोई मिलने न आए उसका दुःख तो नहीं होता है ना ?' यह उनको हमेशा पूछते हैं ।

- वह पप्पा ऐसे थे कि, मिलकर फिर से लौटते हो तब हर वक्त बेटे म.सा. को बोलकर जाते थे कि 'अब फिर से कब आऊँगा, नक्की नहीं है । मेरा इंतजार मत करना ।'

- वह मम्मी-पप्पा गुरुदेवश्री को ऐसा कहते थे कि !, 'म.सा.! मेरा बेटा संयम तो अच्छा पालन कर रहा है ना ! आपको समपत तो है ना ! उसमें कोई दुर्गुण का प्रवेश न हो उसका खास ध्यान रखना ।'

- उस मम्मी को हर समय पुत्र-मुनि के दर्शन से फूट-फूटकर खुशी से रोती हुई मैंने

देखी है। ऐसे मम्मी-पप्पा के दर्शन कभी-कभी करने जैसे हैं !खास-खास-खास स्पष्टीकरण...

१. जैन श्रमण-श्रमणी भगवंत १० हजार से भी ज्यादा हैं। प्रस्तुत पुस्तक में जो महात्मा का वर्णन किया है, वह मेरे अनुभव के आधार से..

बहुरत्ना वसुंधरा वह न्याय के आधार से उनसे भी बढिया बहुत से संयमी हो सकते हैं। पर मेरे अनुभव के अनुसार से ऐसा लगा कि,

सूक्ष्म संयम और अप्रमत्ता की बाबत में प्रायः इनके जैसे संयमी बहुत ही कम होंगे। इसलिए पुस्तक का नाम रखा है धन्न धन्नो अणगार।

२. जो भी लिखा है वह सुनकर नहीं... परंतु साक्षात् देखकर ! स्वअनुभव से! उसमें १% भी अतिशयोक्ति नहीं है।

३. सूक्ष्म संयम के बारे में समझना कठिन भी हो सकता है, उसके पीछे के कारण दिमाग में न भी बैठे.. इसलिए ऐसा भी बनता है कि यह पढते-पढते कदाचित् कंटाला भी आ जाए, कदाचित् निंद भी आने लगे।

तो भी,

एक बार सब बराबर पढना,

ये सब समझने का प्रयत्न करना,

यदि सचमुच संयम की चाह होगी,

तो सिर झुक जाएगा।

नहीं तो... ऐसा भी विचार आ सकता है कि, 'अभी के काल में ऐसी जडता नहीं रखनी चाहिए। यह तो कदाग्रह है ....' वगैरह।

परंतु यह विचार अपनी खामी के सूचक होंगे।

संयमरुपी महात्माओं को तो ऐसा ही लगेगा कि 'वस्तु तो अद्भुत है, एकदम सच्ची।' (हा ! स्वयं पाल नहीं सकते होंगे, तो साथ में ऐसा भी विचारेंगे कि) परंतु हमारे लिए यह कठिन है।

४. इन मुनिवर में जैसे गुण हैं, वैसे दोष भी हैं ही.. और मैं विद्यागुरु के स्थान पर होने

से मुझे वह दोषों का स्पष्ट ख्याल भी है ही ।

परंतु आखिर में तो सभी छद्मस्थ ही है ना ? अपनी फर्ज यह है कि 'जो अद्भुत है, उसकी अंतरमन से अनुमोदना करनी चाहिए... बस, ज्यादा कुछ लिखना नहीं है, पुस्तक ही बहुत बडी है, यह ही सब बोलेगा...'

५. दूसरों को नीचा बताने के लिए यह गुणवर्णन नहीं है । यदि ऐसा हो, तो यह गुण में से सिर्फ १०% ही मेरे में मुश्किल से होंगे, तो सबसे पहले तो मेरा ही हल्का दिखेगा ना ?

परंतु सिर्फ गुणानुराग के लिए, गुणप्रचार के लिए गुणवर्णन है, इसके द्वारा हमारे में वह गुण प्रगटे उसके लिए गुणवर्णन है। इसलिए मेहरबानी करके इसका कोई भी विपरीत भावार्थ मत निकालना।

लि.

युगप्रधानाचार्यसम पूज्यपाद गुरुदेवश्री पंन्यासप्रवर

श्री चंद्रशेखर म.साहेब के शिष्य

गुणहंस वि.

श्री लक्ष्मीवर्धक जैन संघ, शांतिवन, पालड़ी, अहमदाबाद, आसो वद आठम

वि.सं. २०७०

धन धन्नो अणगार

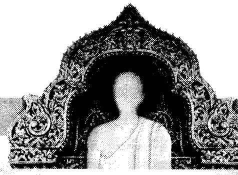

अनुक्रमणिका

*	भूमिका	1-25
1.	निर्दोष गोचरी के गवेषक	26-61
2.	रसना-विजयी	62-75
3.	निर्दोष उपधिके धारक	76-80
4.	निष्परिग्रही	81-86
5.	अप्रमत्तयोगी	87-100
6.	षट्काय संरक्षक	101-104
7.	सूक्ष्म संयम के पालक	105-111
8.	आपवादिक यातना में यत्नशील	112-120
9.	उपलक्षण के वेत्ता	121-126
10.	निःसंगी मुनिवर	127-129
11.	परिषह के विजेता	130-138
12.	गुणगौरववंता	139-141
*	उपसंहार	142-145

भूमिका

.... म.सा.! एक महव का काम है। हम बाद में मिलें।

वयस्थविर, पर्यायस्थविर, श्रुतस्थविर एक आचार्य भगवंत ने मुझे इशारा किया कि- 'हमें एकांत में मिलना है।'

अहमदाबाद तपोवन में खुद के ग्रुप के साथ ही आचार्य म. पधारे थे। संयम में चुस्त, ज्ञान में श्रेष्ठ और सम्यग्दर्शन में दृढ.... ऐसे थे वह सूरिभगवंत .... !

मुझे उनके प्रति पहले से ही साहजिक बहुमान भाव...

परंतु तब साधु भ. ज्यादा... इसलिए शाम तक मीटींग करने का अवसर ही नहीं मिला। शाम को उनका विहार था साबरमती की तरफ... हमारा भी साबरमती तरफ विहार।

विहार के समय उन्होंने पूछा - आप साबरमती में कहाँ पर रुकने वाले हो?

हम सब नूतन उपाश्रय में रुकने वाले हैं।

हम बडे उपाश्रय में रुकेंगे.... परंतु नजदीक ही हैं। वहाँ पर हम मिलेंगे।

हम सब साबरमती पहुँचे।

मैं थोडा आलसी, इसलिए दूसरे दिन मिलने ही नहीं गया।

मुझे ऐसा कि 'ऐसा कोई विशेष काम लग नहीं रहा।'

परंतु शाम को उनकी तरफ से समाचार आए....

''मिलने आओ तो अच्छा... रात को यहीं पर संथारा कर लेना।''

अब मैं तुरंत तैयार होकर पहुँचा - बडे उपाश्रय में।

रात को प्रतिक्रमण के बाद एक-डेढ घंटा अलग-अलग प्रश्नों पर चर्चा की... सचित्त-अचित्तादि के समाधानों पर विचारणा की। टाईम हो गया... इसलिए आचार्य-देव संथारे के लिए पधारे, मैंने भी संथारा किया।

'मुझे किस लिए बुलाया होगा प्रश्न तो बहुत निकल रहे थे, परंतु उन सभी के लिए मुझे स्पेश्यल बुलाया होगा ऐसा तो कुछ लगता नहीं है। तो फिर... ? ऐसे अनिणत विचार में ही मैं संथार (सो गया) गया।'

सुबह वंदनादि करके, लगभग पौने छः के आसपास, फिर से नूतन उपाश्रय में

गया वहाँ पर उसी दिन से वाचना सत्र चालू होनेवाला था ।

साढे छः बजे का वाचना का समय... !

और बराबर मेरे पीछे-पीछे ही... सुबह छः बजे...

वो आचार्य भगवंत के एक शिष्य ऊपर आकर मुझे कहकर गए कि, पूज्य गुरुदेवश्री का गिरधरनगर की ओर विहार है, उन्होंने खास आपको मिलने के लिए कहा है । अभी नीचे दर्शन कर रहे हैं, ऊपर ही पधार रहे हैं ।

मुझे आश्चर्य हुआ । अब मुझे पता लगा कि - जो काम के लिए उन्होंने मुझे बुलाया था, वह काम तो बाकी ही है... इसलिए ही आचार्य भगवंत स्वयं ही यहाँ पर पधार रहे हैं ।

'तो फिर रात को मुझसे बात क्यों नहीं की ? अगर इसके लिए ही बुलाया था, तो तब ही बात कर लेनी थी ना ?... मुझे कुतुहल हुआ ।'

परंतु तब तक आचार्य भ.स्वयं ही ऊपर आ गए ।

आचार्य भ.आसन पर बैठे । मैंने ऊनकी गोदी में सिर झुका दिया । बहुत वात्सल्य हृदयवाले उन्होंने मेरे सिर पर हाथ सहलाकर आशीष दिये...

वडिलों का वात्सल्य वही ही तो मेरे जैसों की पूँजी है ना ?

और अब हमारी तपोवनवाली मीटींग चालु हुई...

''साहेब ! आप सामने से पधारे ।''

हाँ ! मुझे आपको एक काम सौंपना है...

मेरा अहोभाग्य ! आपने मुझे याद किया ।

सुनो... मेरे एक होंशियार शिष्य हेमविजयजी को (नाम बदलकर लिखा है) पहचानते हो ? सूरत के हैं ! उनको आपके पास पढने के लिए रखना है ।

आप तो स्वयं 45 आगम के ज्ञाता हो और पढाने में कुशल भी । आपके ग्रुप में और पूरे समुदाय में भी, आप तो स्वयं ही विद्वान हो । कितनी बार तो मैं खुद भी अनिश्चित प्रश्नों के समाधान लेने की आपके पास अपेक्षा रखता हूँ और ऐसी परिस्थिति में आपको आपके दाएँ हाथ जैसे शिष्य को मेरे पास रखना पडे...
ऐसा क्यों साहेब ....?''

फिलहाल अभी तो तीन महीने अनिश्चित प्रसंग वगैरह है... खाली विहार है, उसमें इन सबका स्वाध्याय बिगडेगा । दूसरे सबका तो ठीक, पर यह हैमविजयजी का स्वाध्याय बिगडे वह मुझे पसंद नहीं । तो बोलो, इसे आप रखोगे ?

अरे रे ! साहेब ! आपको तो आज्ञा ही करनी होती है, परंतु मुझे अभी तक पता नहीं चल रहा है कि आपने तो स्वयं कितने ही कठिन-कठिन ग्रंथों का संशोधन किया है। आपके शिष्यों को भी आपने सभी तरह से अच्छा तैयार किया है और आज आप आपके श्रेष्ठ-अतिव्युत्पन्न शिष्य को मेरे पास रखेंगे तो सभी कहेंगे कि - 'गुरु-शिष्य में परस्पर जमता नहीं होगा... झगडे हुए होंगे।

आजकल तो अच्छा सोचनेवाले कहाँ मिलते हैं ? आपने हैमविजयजी को पढने के लिए मेरे पास रखा है। वह तो कोई नहीं मानेगा !

... अरे, खुद मुझे भी उस समय (वक्त) यही शंका हुई कि 'हैमविजय में कुछ खामी तो नहीं है न ? वहाँ पर परस्पर का संघर्ष तो नहीं होता होगा ना ?'

पर तीन-चार साल के अनुभव के बाद खुल्लम-खुल्ला अनुभव हुआ कि 'वीर-गौतम जैसी जोडी है।'

तो फिर क्यों आप इन्हें मेरे पास में रख रहे हो ? किसलिए चारों ओर से अपयश को ले रहे हो ? - उस वक्त मैंने अपनी कुतूहलता व्यक्त की।

आचार्यदेव ने मुझे जवाब दिया-

देखो, मेरे पास में रहे उसमें उनका पढने में जरा भी विकास होता नहीं है। मेरे प्रति अतिभाव के कारण सतत मेरी सेवादि में उनका मन ओतप्रोत रहता है। दूसरे भी साधु हैं, सेवा करते ही हैं, परंतु हैमविजय को सब कुछ 100% - 110% करने का भाव रहता है !

क्या करूँ ? मेरा स्वभाव गंभीर और शांत है। मैं किसी को ठपका (डांट) नहीं दे सकता... कडक नहीं बन सकता। परिणामत: मेरे इस शिष्य का शास्त्रअभ्यास का काल बिगड रहा है। इसलिए मैंने यह निर्णय लिया है।

महाराज! आचार्यदेव ने सहृदयता से मेरा हाथ पकड लिया...

लोग क्या बोलेंगे ? वह देखने जाऊँ, तो मेरे शिष्य का कितना नुकसान होगा। वह नहीं चलेगा। गुरू के तोर पर मेरी फर्ज है कि - भले ही लोग चाहे जितना मुझे अपयश दे, भले ही चाहे जितना मेरे लिए बोले। बाहर के बोले या अंदर के बोले। उसकी चिंता मुझे नहीं करनी है। इसलिए हैमविजय का हित अटके वह उचित नहीं है।

बस, आप इसे तैयार करना... बराबर ?... पढाओगे ना ? एक बार 'हाँ' बोलो तो पता चले !''

"अरे ! यह आप क्या कह रहे हैं ? साहबजी ! मुझे तो बहुत खुशी होगी। आपकी सेवा का यह अमूल्य अवसर मुझे कब मिले ?"

... पर मेरे बुजुर्ग पूज्य हंसकीत म.सा. यहाँ पर ही हैं, मुझे उनकी इजाजत लेनी पडेगी। वह हाँ ही कहेंगे... बहुत उदार हैं, परंतु योग्य विधितो जरूरी है ना ?

मैंने पूज्य हंसकीत म.सा. को बाहर बुलाया, सब बात की, और उन्होंने भी हाँ कहा।

* * * * *

परंतु, मेरा मन अभी तक आश्चर्य के भावों में ही था...

तो भी मैंने सीधा नहीं पूछा। पर...

"साहेबजी ! इतनी ही बात थी, तो आपने मुझे तपोवन में या कल रात क्यों नहीं की ? स्पेश्यल उसके लिए ही मुझे बुलाया था ना ?"

तब आचार्यदेव बोले...

आपकी बात सच्ची... परंतु हैमविजय ने अभी तक हाँ नहीं बोला था।

हम सुरत में थे तब से ये बातें चल रही थी... पर किसी भी हिसाब से वह मुझसे अलग रहना नहीं चाहते थे। दूसरा कुछ है भी नहीं। सभी तरह से योग्य हैं। परंतु आपको कहना कि - मेरे पास में रहने से उनका स्वाध्याय बराबर नहीं होता। मेरा ध्यान रखने में ... दूसरी आडी टेढी बातों में ... ज्यादा टाईम व्यर्थ बिगाडते हैं। इसलिए इस वक्त... विजयजी को आपके पास पढने की इच्छा थी ही - इसलिए मुझे हुआ कि इनके साथ इनको भी आपके पास रखकर जाऊँ, तो इनका अभ्यास ज्यादा अच्छा होगा। क्षमता बहुत अच्छी है।"

अरे, साहेब ! मुझे पता ही है ना। मैं इनको पहले से ही जानता हूँ।

इसलिए ही इनके ऊपर मुझे बहुत आशा है। वह जो तैयार हो जाये तो शासन को बहुत लाभ हो वैसा है। परंतु वह समझ ही नहीं पा रहे हैं।

'जो कुछ भी हो, भले ना तीन महीने के लिए। पर मैं आपसे अलग नहीं होऊँगा (पडूंगा) - बस यही जिद पकडकर बैठे थे। और वह माने नहीं, तब तक आपको कोई बात करने का अर्थ नहीं था।'

मेरी तो इच्छा पक्की ही थी, इसलिए तपोवन में थे तब से ही मैंने इसकी भूमिका बाँधली थी। उनको समझाने का चालू था... पर, ऐसी बाबत पर जिद पर चढे तो फिर कितना कह सकेंगे ना... ?"

''साहेब ! आपकी बात सच है । पर अब ?''

कल रात को हम बैठे, सामान्य बात की... परंतु जो कहना था वह मैं कह नहीं पाया - वह इसी कारण से । इसलिए फिर थोडी देर के बाद आपको दूसरे महात्मा के पास चर्चा-विचारणा में बिठाकर, हम दोनों एक ओर बैठे थे । मुझे अंतिम भी प्रयत्न करके... जो वह एक बार हाँ बोल दे तो फिर तब ही बात कर लेनी थी ।

परंतु वह तो कह रहे थे - दूसरा आपको जो भी करना हो वह करो, पर यह बात नहीं...

जो कि, पहले भी दो-तीन बार ग्लान की सेवा के लिए, पंडितजी के पास पढना चालू था... ऐसे कारण से अलग रहे ही थे... यह कोई पहलीबार नहीं है । उस वक्त उनको दिन बीताने कठिन पड रहे थे । मान लेते थे, पर फिर भी मेरे बिना रह नहीं सकते ।

... बस, वह यही बात लेकर बैठे और अंतिम तक उन्होंने जरा भी तैयारी नहीं बतायी... वह देखकर फिर मैंने भी बात छोड दी...

और आपको भी हुआ होगा ना कि मुझे क्यों बुलाया ?

हाँ ! मुझे हुआ तो था । फिर सोचा-होगा जो भी होना हो । परंतु ऐसी तो कल्पना ही नहीं थी ।

पर अब, आज सुबह मैं जाप में था... तब वह उठकर तुरंत रोज आये वैसे आये, और सामने से ही कहकर गये कि, 'गुरूदेव आपकी जो इच्छा हो वह करने के लिए तैयार हूँ ।

मैंने तो मन से आशा ही छोड दी थी । पर बाद में, मेरी भीतर की इच्छा को जानकर उन्होंने समर्पण भाव से अपना आग्रह छोड दिया, और अब तैयार हो गये हैं ।

मुझे उन पर पूरा विश्वास था ही...

इसलिए... मेरी बहुत इच्छा होने से ''रह जाऊँगा'' ऐसे स्वीकारा तो है, और फिर शर्त भी की है कि - 'तीन महीने के बाद फिर से मिल जाए.. तब तक ही अलग रहना, तो ही ।'

''तो फिर आपका क्या कार्यक्रम है ?''

''हमारा पालीताणा की तरफ विहार है । वहाँ से वापस होते चैत्र मास की ओली कलिकुंड करने की भावना है । वहाँ पर पूज्य यशोविजयसूरिजी की वाचना भी है । इसलिए एक बार खास साहेबजी को नजदीक से सुनना है । दूसरी कही पर भी ओळी नक्की (तय) की नहीं है ।''

इसलिए, फिलहाल तो... तीन महीने के लिए तैयार हुए हैं, तो अभी रहने दो। बाद में देखेंगे...

इतना एक काम करना है। तुरंत इसलिए ही आया हूँ। आपको भी वाचना का टाईम होगा.. और मुझे भी आगे जाना है।

वह तो प्रतिलेखन वगैरह करकर तैयार होते होंगे। थोडी देर बाद आएँगे। मैं उनसे बात कर लेता हूँ। और भेजता हूँ। हम सभी कलिकुंड आएँगे, तब क्या करना है ? वह (उसके) समाचार भिजवा देंगे ...

और इस तरह, आचार्य म.सा. ने ज्यादा समय रखने की सहमति भी ले ही ली, परंतु कितना समय ?

मैंने भी उसके लिए विशेष पृच्छा नहीं की...

''अच्छा साहेब ! खुशी से आपके ही हैं और आपके कहने से ही रहनेवाले हैं इसलिए बाद में आप जैसा कहोगे वैसा ही... !'' मैंने सच्चे हृदय से स्वीकार किया।

उलटा मुझे तो ऐसा लाभ कब मिले ? शासन के एक रत्न को तैयार करने में मैं निमित्त बनूं तो वह अच्छा ही है ना। और आपकी भी कितनी उदारता कहलाती है कि 'आपके जैसे, इस तरह सिर्फ पढाने के लिए, इतना सब भोग देकर, सामने से इतनी इच्छा रखें।...' मुझे तो क्या ? मेरा तो इसमें कुछ जानेंवाला नहीं है। आप जरा भी चिंता मत करना। और दूसरी भी सूचना वगैरह... कभी भी-कहाँ पर भी लिखकर भिजवाओगे तो भी मुश्किल नहीं है। आप सब निःसंकोच बताते रहना।.......''

''बस ! दूसरा कुछ नहीं सभी प्रकार से शक्ति बहुत है। परंतु आडी-टेढी बातों में थोडा लक्ष्य ज्यादा देते हैं इसलिए... आठ-दस वर्ष होने के बावजूद इनकी क्षमता के अनुसार से इनका इतना अभ्यास हुआ नहीं है। न्याय में (अनिश्चित सिद्धांत लक्षण विषय तक किया है) उसके बाद आगे के ग्रंथ भी कल्याणभाई और संतोषभाई के पास करवाये हैं। उन दोनों का भी इनके ऊपर विशेष वात्सल्य हैं।''

''सही है। क्षयोपशम अच्छा है इसलिए उन लोगों को भी पढाने की मजा आए... वह स्वाभाविक ही है ना ?''

''बस, इसलिए अब खास इनको आगम में प्रवेश करवाना है न्याय की पकड तो बहुत अच्छी आ गई है। आगमों में भी तैयार होंगे तो ज्यादा लाभ होगा, यह है ही ना हमारे... महाराज। आपके पास पढकर तैयार हुए तो कितनी शीघ्रता से पैंतालीस आगम पूरे हो गए। इसलिए आपकी शक्ति का मुझे भी उपयोग करना है।''

अरे साहेब ! वह तो देव-गुरू की कृपा है । हमारे गुरूदेवश्री की एक ही भावना मेरे लिए विशेष थी कि - 'मेरी शक्ति अध्यापन + अध्ययन को उपयोगी लेखनादि में ज्यादा से ज्यादा खर्च हो ....!' स्व-पर का भेद तो उन्होंने कभी भी रखा नहीं था ।

''आप साधुओं को पढाकर तैयार करो ।''... ऐसा बार-बार मुझे कहते थे। और आपके गुरूमहाराज ने भी उदारता रखी, इसलिए उनको भी पढाने का हो गया। अब तो पूरे ग्रुप में सब एक-एक से बढिया महात्मा तैयार होने आए हैं ।

तो इनको भी तैयार करो । - इतनी इच्छा है ।

आप आशीर्वाद दो । जिससे आपके वचन-आपकी भावना को पूरा कर सकूँ ।

पूरा आशीर्वाद है । ऐसा कहकर आचार्य म.सा. खडे हो गये...

मैं भी, उन्हें बिदा करने नीचे तक गया...

चलते-चलते.. मुझे फिर से धीरे से कहा..

साथ में आपको एक गुप्त बात बतादूं... वह बहुत जिद्दी है, भले.. उनकी जिद्द हमेशा के लिए अच्छी वस्तु के लिए ही होती है । परंतु कभी-कभी उसमें अतिरेक भी हो जाता है । पढाने के साथ इन बातों पर भी उन्हें आपको गढना है (समझाना है) वह मुख्य नहीं है, परंतु 'पारकी मा कान वींधी शके ।' बराबर ना ।

परंतु,

उस वक्त.. मेरा हृदय भर गया था...

बस, मुझे उन आचार्य म.सा. के प्रति

एक गुरू की हैसियत से - उनकी उदारता के प्रति,

उनके शिष्य के लिए अपयश को ग्रहण करके भी भोग देने की तैयारी के लिए बहुमान उत्पन्न हुआ...

इसलिए, मैं कुछ बोल नहीं पाया. सिर्फ हँसकर मैंने स्वीकार कर लिया ।

उसके बाद, शाता में रहना कहकर... आचार्य म.सा. ने विदाय ली ।

और इस तरह आज से बराबर पौने 4 वर्ष पहले... **पोष सुद आठम** को मेरे पास वह मुनिराज रहेने के लिए... ज्ञानाभ्यास के लिए... आये ।

मुझे उनके लिए पूरा मान था ही.. क्योंकि,

1. सुरत-नानपुरा के रहवासी वह 'युवान' सी.ए. की सी.पी.टी. जैसी सी.ए.फाउन्डेशन की परीक्षा में - पूरे दक्षिण गुजरात में प्रथम नंबर प्राप्त किया था । और उसके बदले सी.ए. की ईन्स्टीट्यूट (संस्था) ने उनका 5 स्टार होटल में गोल्ड

मेडल से सम्मान किया था ।

2. इतने होशियार होते हुए भी, वैराग्य प्राप्त करके, भागकर दीक्षा ली, वह मुझे ख्याल में था...

3. उनके दीक्षा के बाद का संयममय-तपोमय जीवन मैंने सुना हुआ था । अखंड अठ्ठारह शुद्ध आयंबिल (सिर्फ चावल से, और उसमें भी चावल के ऊपर चार ऊँगली जितना ऊँचे तक पानी रहे उतना पानी में भिगोकर ही चावल वापरना... दूसरी कोई भी चीज नहीं ऐसे आंबिल) और ऊपर उपवास... ऐसी कठिन साधना एक बार तो की थी और इसके सिवाय वे बहुत आयंबिल करते ही रहते हैं... वगैरह मुझे ध्यान में ही था ।

इसलिए मुझे उनके लिए 'एक गुणीयल साधु आये हैं' उसका... अतिशय आनंद था ।

* * * * *

उस मुनिराज की आत्मकथा को मैं आलेख रहा हूँ ।

अब तक बारह आत्मकथाएँ लिखी हैं । यह तेरहवीं है । बारह में कभी भी ऐसा लगा नहीं था कि मैं उस आत्मकथा के पात्र को न्याय दे सकूँगा या नहीं ?

परंतु इस आत्मकथा को लिखने में सचमुच मन दुविधा में है ...

इन मुनिकी महानता को आलेखने की तीव्र भावना को रोक नहीं सकता ।

तो दूसरी ओर, मुझे स्पष्ट लग रहा था कि 'मैं उनको न्याय दे नहीं सकूंगा । वह जैसे भी है उनको बता नहीं पाऊँगा । उनके 100वें भाग को भी बता नहीं पाऊँगा ।' इसलिए ऐसा हो रहा है कि उनका अवमूल्यन हो, उससे अच्छा तो बेहतर है कि उनके लिए कुछ लिखू ही नहीं ।

परंतु नहीं, बालोऽपि किं न निजबाहुयुगं... यह गाथा मुझे उनके लिए लिखनी है । सभी को एक ही विनती है कि मेरी पूरा लिखावट यदि आपको असरकारक न लगे, तो उसमें उनके जीवन की, उनकी परिणति की न्यूनता मत समझना... परंतु मेरे आलेखन को ही न्यून समझना ।

अब तक कि आत्मकथाओं में वैराग्य-वात्सल्य-गुरूभक्ति-शासन-राग-निस्पृहता-ब्रह्मचर्यादि गुण वगैरह हमने देखे हैं । इस आत्मकथा में वह सब तो थोडा-बहुत अंश में आएँगे ही पर उसके साथ ऊपर की कक्षा में जो महव के गुण हैं - **संयमयोगों में अप्रमाद** वह इस आत्मकथा में देखने को मिलेगा ।

अंतिम पौने चार साल से वह मेरे साथ हैं । उनकी प्रत्येक चर्चा को मैंने देखा है, मेरी बुद्धि से उसे देखा (परखा) है, मैं रोया नहीं, पर मुझे आश्चर्य हुआ है... इनकी

अप्रतिम अप्रमत्तता मुझे लग रही है, मुझे मेरे प्रमाद का दर्शन करने के लिए-मेरे प्रमाद का स्वीकार करवाने के लिए मजबूर कर रहा है । स्वाध्याय की, लेखन की सफलताओं से पैदा हुआ अभिमान उनके **'अप्रमाद'** के सामने राख होने जैसा लग रहा है ।

बहुत लिखना है, लिखूँगा...

परंतु उससे पहले उनकी आत्मकथा की भूमिका रूप उपसंपदा के अंग की विशेष घटना तो लिखूँ...

उनकी गुणवत्ता में आज्ञापारतन्य का महव का भाग है । उसका विचार हमें आये बिना नहीं रहेगा ।

* * * * *

वह हमारी निश्रा में रहने आये । (अभ्यास) पढाई चालु हुई, वह अभ्यास वगैरह सब कर रहे थे, परंतु मुझे ऐसी प्रतीति हो रही थी कि 'उनका मन गुरुदेव के प्रति अत्यंत ढला हुआ है । वह गुर्वाज्ञा के पालन के लिए यहाँ पर तीन महीने रुके हुए हैं, बस वह नौकरी पूरी करके उन्हें घर जाना है । फेक्टरी में नौकरी करने में दुःख भले न हो, परंतु उल्लास भी नहीं होता ।'

उसमें भी, उनके आचार के बाबत में जबरदस्त चुस्तता मुझे कभी-कभी जडता से भरी हुई लगती थी, इसलिए मैं उन्हें डाँटता भी था । मैं उनके प्रति अरुचि भी व्यक्त करता था । ताकि उन्हें मेरे प्रति विशेष लगाव हो वह भी संभव है । और दूसरे भी अनिश्चित कारण... अनिश्चित प्रसंग... ऐसे बने हैं कि, जिससे उनको मेरे प्रति सद्भाव, समर्पणभाव जिससे अपनापन खडा ही न हो ।...

(क) 'इच्छामिच्छादिक... समाचारी संभाली नहीं... उसमें जो आखिरी-उपसंपदा समाचारी है... उसका भी उनको जरा भी ख्याल नहीं था.... इसलिए 'ज्ञानोपसंपदा' में विद्यागुरु का विनय + समर्पण... वह सब ऐसा संभालना होता है जैसे खुद के गुरू महाराज का संभालते हो वैसा - ऐसा भी उनके ध्यान में नहीं था ।'

(उनके पूज्य गुरूदेवश्री को शायद ऐसा लगा हो कि.. 'यह हैमविजयजी तो कहीं पर भी विनयादि को भूले वैसे नहीं थे... और मैं नहीं होऊँ तो भी, वह विद्यागुरू के प्रति, पूरा समर्पण रखेंगे ही !' ऐसा मानकर भी, उन्होंने कोई भी सूचना मुनिराज को नहीं भी की हो...)

'मुझे पूज्य गुरूदेवश्री ने भेजा है, इसलिए विद्यागुरू का विनय तो पूरा संभालना'

पर....

'पूरा दिन... सभी बात में... सब उनको पूछ-पूछकर ही करना हो' ऐसा उनको पता नहीं था ।

इसलिए बना ऐसा कि...

इतने साल वह अपने गुरूदेवश्री के साथ में ही रहे थे, उसमें जैसे जो-जो भी प्रसंग बने उसमें वैसे-वैसे ही निर्णय लेते थे... ऐसे निर्णय खुद के अनुभव के आधार से लेते थे..

कोई अलग प्रकार की परिस्थिति खडी हो उसमें खुद के क्षयोपशम के अनुसार से निर्णय लेते थे..

अथवा तो खुद के बडे गुरूभाई को पूछे... उनके साथ बातचीत करके निर्णय लेते थे...

पर, मुझे कुछ भी कहते या पूछते नहीं थे । खाली पढने की बात आती थी.. उसमें सब पूछ लेते थे...

इसलिए, दूसरी सब बात से, उनके मन में ऐसा ही हो रहा था कि

'कुछ अयोग्य हो जाएगा तो... शास्त्र की दृष्टि से गलत निर्णय ले लिया तो,

उसके कारण सिर पर भार ही लगा रहता था... अच्छे से रह नहीं सकते थे ।'

उनका स्वभाव ऐसा था कि, 'छोटी-छोटी बात भी खुद के गुरूदेवश्री को सब पूछ-पूछकर' करने की ही आदत थी. स्वयं क्या किया ?. 'क्या करना है ? क्या वापरना है ?' कितना वापरना है ?. आज क्या हुआ ? .. कहाँ क्या हुआ ?.. ऐसा सब... कहने की पूछने की आदत !

यह सब तो बंद हो गया था..

इसलिए फिर इनका मन यहाँ पर कैसे जमे ?

(ख) उनको आए अब सवा महिना भी नहीं हुआ था और उसमें बडी दीक्षा-दिन वद-7, सु-5 वगैरह आने से खाली 30 दिन के अंतर में ही उन्होंने 4 उपवास किये...

उनके लिए वह सामान्य था... खुद के गुरूदेवश्री की सम्मति से ही हर साल और हर महीने इन दिनों में उनको यह सब उपवास होते ही थे.. परंतु उनके साथ में हमारे 50-60 साधुओं में से एक-दो साधु ने, '' ये फटाफट उपवास कर रहे हैं '' उसका पता चला तब उन्होंने 'कारण क्या है ?' वह पता न चलते मुझे सावधान किया...

''महाराज साहेब ! हेमविजयजी आपकी निश्रा में है ना ? अपनी मर्जी से उपवास कर रहे हैं... एक तो रोज के आंबिल और उसमें भी ऐसा सब करते रहेंगे तो

पढेंगे कब ? कोई गोचरी-गोचरी का तो कारण नहीं है ना ? क्यों इतने सब उपवास कर रहे हैं ?''

'ठीक है मैं पूछ लूंगा, मैंने ज्यादा लंबी बात नहीं की ।'

हैमविजयजी पाठ के लिए आये तब तुरंत उनके ऊपर मैंने कडक शब्दों में नियंत्रण किया कि-

''मुझे पूछे बिना अभी से एक भी उपवास करना नहीं है, सीधे-सीधे आंबिल चल रहे हैं - वह बराबर है ।''

उनको एकदम झटका लगा..

जाने तिरछी रीत से स्वयं के ऊपर स्वच्छंदता का आरोप लगा हो ?

''हाँ !''... तो भी... जल्दी ही, तुरंत स्वीकार लिया ।

उसके एक सप्ताह बाद, फिर से 'वद 7' आई.. उनके मन में दुविधा खडी हुई ।

एक ओर यह नियमित उपवास छोडना नहीं है...

और दूसरी ओर, वह 'अ-तिथि' को उपवास करते थे उसका निमित्त बाहर बताने में संकोच कर रहे थे ।

क्यों ?

(महेसाणा के पास पाँच साल पहले... मार्ग में अकस्मात में मृत्यु पाये हुए चार साध्वीजी भगवंतों में से जो सबसे मुख्य साध्वी भगवंत थे..) पूज्य साध्वी भगवंत श्री .... का यह इन मुनिराज पर बहुत ही बडा उपकार था ! उनकी दीक्षा हुई उसके पीछे मुख्य योगदान उन साध्वीजी भ. का था...

किस प्रकार से ?

आज से चौदह-पंद्रह साल पहले हैमविजयी जब मुमुक्षु अवस्था में थे तब.. उस समय के अलग-अलग आठ-दस समुदाय के कम से कम पंद्रह-सतरह आचार्य भगवंत और दूसरे भी अनेक प्रभावक पदस्थ वगैरह का बहुत अच्छा निकट से परिचय था तो भी, उन्हें संसार त्याग के लिए उल्लास-उत्साह जगता नहीं था ।

और उसके कारण... बचपन से ही अतिसंस्कारी + दीक्षार्थी की तरह ही 'नानपुरा संघ में' इन महात्मा की पहचान होते हुए भी (सुरत की नं.1 एस.पी. बी.कॉलेज इंग्लीश मीडीयम) में एफ.वाय.बी.कॉम. तक पहुँच गये थे । ऐसे... उस समय के 'यह मुनिराज' को वह साध्वीजी ने सवा-डेढ साल में तो ऐसा रंग लगा दिया कि उनकी बी.कॉम. + सी.ए. की कैरीयर को बीच से छोड दिया और सी.ए.इन्टर + Articleship के साथ-साथ में चलती टी.वाय. की फाईनल परीक्षा को बाकी

रखकर बीच में से ही सब पढाई को एक झटके में छोड देने का गजब पुरुषार्थ किया ।

उसमें मुख्य बात तो यह थी कि वह साध्वीजी भ.सिर्फ इन मुनिवर-मुमुक्षु को ही पारा चढाते और परिवार की इजाजत लेने के लिए आंदोलन पर चढाते ऐसा नहीं पर सात्विक प्रेरणा + मार्गदर्शन के साथ-साथ उनके पुरुषार्थ को बल मिले तो उसके लिये स्वयं भी तप स्वाध्याय इत्यादि अनेक आराधना करने के द्वारा बहुत-बहुत भार लेते..

और मुमुक्षु अवस्था में जब भी उनको मिलने जाते तब अधिकतर वे साध्वीजी भगवंत उनके 'बा महाराज' को साथ में ही बिठाते और यह वैरागीज़ीव भी कोई भी दूसरे छोटे साध्वीजी भगवंत के साथ जाते-आते भी नजर नहीं रखते । वैसे तो इन सभी को इस मुमुक्षु से भय संकोच रहता था ।

तो भी उनके आज्ञावर्ती 14 साध्वी भगवंतों में भी उनके पीछे-पीछे सदभावना की भरती आते सांकली अट्ठम, प्रतिदिन कम से कम हज़ार / दो-तीन हजार का रात्रि स्वा. जाप वगैरह अनेक योगों की साधना उनकी मांडली में चालू हो गई.. उसमें भी अट्ठम के लिए दोडादोड होने लगी तब '1000-2000.... गाथा का स्वा. का स्टोक तैयार हो तो ही अट्ठम की इजाजत मिले' इस रीति से सामने से तप त्याग का यज्ञ चालू हुआ था... यह डेढ-2 साल से भी ज्यादा चल रहा था...

इस तरह क्रमशः प्रयत्न करने के बावजूद भी परिवार में से इजाजत न मिलते गुप्त में तो जाहेर में उनकी दीक्षा हुई...

अब दीक्षा तो हो गई परंतु तो भी उनके संसारी परिवार के साथ संपूर्ण समाधान की ठोस भावना + प्रबल अपेक्षा खडी थी इसलिए उन सभी छोटी साध्वीजीओंने स्वयंभू उल्लास से वह सामूहिक आराधना चालू ही रखी थी । बडे साध्वी म.सा. को तो वर्ष में एक-दो महीने ही आंबिल के पारणे होते थे उसमें भी दो विगई का त्याग रखते थे और तब इन दो विगई के उपरांत और एक विगई का मूल से त्याग चालू किया । (इस तरह पारणे में 3 विगईओं का मूल से त्याग किया ।)

थोडे में, ऐसे सब अतिविलक्षण + अतिविशिष्ट उपकारों की **ऋणमुक्ति** को विचार भी नहीं सकते-परंतु खाली **उपकारस्मृति** की लोकोत्तर भावना से..

उन उपमातीत उपकारी 'गुरू मैया' की हर महीने की तिथि को उपवास करने का संकल्प किया था । इसलिए यह वद सातम की आराधना चालू थी ।

परंतु, ऐसे समय में दूसरा कोई पूछे तो ऐसा किस तरह बोलूं-

'मेरे उपकारी एक साध्वीजी भगवंत की पुण्यतिथि का उपवास है ।'

कैसा लगे ?

'कोई साधु म.सा. एक साध्वीजी भ.की स्मृति में उपवासादि करें' वह सब सभी के दिमाग में थोडे बैठेगा ?

कदाचित् कितनों को वह हास्यास्पद भी लग सकता है..

अथवा, किसी को ऐसे मानो 'एकदम विचित्र भी लग सकता है.. ... इत्यादि संकोच के कारण उनको यह बात करने में मेरे आगे भी क्षोभ का अनुभव हो रहा था..'

और

इसलिए उपवास का पचक्खाण करते पहले मुझे जब लाचार बनकर इस निमित्त का पता करना पडा तब उन्होंने पहले तो कहा - ''मुझे पूज्य गुरुदेवजी ने ही महीने में दो उपवास करने को कहा है... मैं एक भी अधिक उपवास नहीं करता...''

सुद पांचम और वद सातम... यह तो मेरे पक्के ही है !''

पर, बाद में वद सातम का कारण पूछते.. धीरे आवाज से.. अटकते-अटकते बोले.. पिछले वर्ष एक्सीडेंट में जीन साध्वीजी भगवंतो का कालधर्म हुआ था उनका मेरी दीक्षा होने में बहुत बडा उपकार है इसलिए उनकी तिथि को हर महीने उपवास करता हूँ.. ''वगैरह..

''तुम्हारें गुरू महाराज साहेब ने कहा है इसलिए बराबर ही है बाकी उसके सिवाय एक भी अधिक उपवास नहीं करना ! हां - जी ! उन्होंने राहत की सांस ली।''

(ग) उस समय 3 मुमुक्षुओं की दीक्षा पारिवारिक युवा मिलन-समुदाय (ग्रुप) मिलन वगैरह प्रसंगों की हारमाला और हमारे पू.गुरूदेवश्री की नरम तबियत के कारण 60-70 से भी ज़्यादा महात्माएँ तपोवन में थे.. उसमें गोचरी भले ही निर्दोष और रोज अलग-अलग महात्माओं की रसोडे में आना-जाना वगैरह के कारण कहाँ कौन सा अधिक छोटा भी दोष किससे खडा हो जाए ? वह न भी पता चले।

ऐसे तो वह महात्मा ऐसे समय में खुद की गोचरी दूसरे किसी को सौंपे भी नहीं, परंतु तो भी मांडली में स्थापना दोष वाली वस्तु के भी हाथ-सायणी-ढक्कन वगैरह इधर-उधर हो, उसमें से बचने के लिए वह हैरान हो जाते थे.. कुछ भी गडबड तो चलाते ही नहीं थे, परंतु फिर उसके कारण रोज किसी न किसी के साथ खुलासा.. सूचनाएँ यह सब करने में उनका दिमाग थोडा विचलित हो जाता था।

उसमें भी वहाँ (तपोवन में) बाहर वहोरने के काउन्टर के पास ही। कबाट में मसाले वि. सूखी वस्तुएँ रखी हुई हो उसमें स्थापना नाम का दोष लगता है इसलिए उसमें से कुछ भी नहीं चलेगा... इसलिए अंदर कोठार में जाना पडे... उसमें भी स्टाफ

वालो को लगा कि अब तक इतने सालों में कोई भी ऐसा खटपटिया बर्ताव करनेवाला आया नहीं है और यह भला कौन नये आये हैं! यह सभी बातें अमुक महात्माओं के पास पहुँचते ही.. थोडा वातावरण बिगडने जैसा हो गया।

इसलिए उनको अमुक चीजें हाजर होते हुए भी छोडनी पडती थी जो उन्हें पसंद नहीं थी।

अथवा तो एकदम निर्दोष मिलता ही है तो 'स्थापना दोष भी क्यों लगाना...

ऐसी सभी विडंबनाओं से उसे जल्दी से छूटकारा मिले-तो अच्छा - ऐसा ही सोचेगा ना ?

(घ) इन महात्मा को 'सांकली-आयंबिल' चल रहे हैं.. हम सभी वर्धमान तप की ओली करते हैं वैसे एक के बाद एक बढते क्रम से यह मुनिवर आंबिल करते हैं और अंत में उनके गुरुदेव की आज्ञा से उपवास भी करते हैं।

परंतु 'वर्धमान तप की भावना हो तो हि 'वर्धमान तप' कहलाता है ! उसमें भी वर्धमान तप की सब विधिभी बराबर न करे उससे 'वर्धमान तप' कैसे कहा जाएगा? वगैरह वितर्कों को लेकर 'ओली कर रहा हूँ' ऐसे बोलेगे नहीं ही, परंतु 'सांकली आंबिल बोलते हैं।'

ऐसी एक ओली के पारणे किये बिना उन्होंने यहाँ पर आने के बाद दूसरी ओली चालु रखी थी। क्योंकि 'गुरूदेवश्री मिले उसके बाद पारणा करना है।' ऐसी उनकी भावना थी।

सब मिलाकर तीन महीने के ऊपर आंबिल हो गए। उसमें भी नयी ओली के 40% से भी ज्यादा आंबिल हो गए थे।

मैंने उनकी परीक्षा लेते हुए कहा...

'पारणा करोगे ?'

'आप जैसे कहो, वैसे। जो कि मुझे कोई तकलीफ तो है ही नहीं, खाली पूज्य गुरूदेवश्री को मिलने के बाद ही आंबिल छोडने की तीव्र भावना है तो भी...'

मैंने पक्की परीक्षा की, सचमुच पारणा कराया और बिलकुल इच्छा न होते हुए भी उन्होंने पारणा भी किया। समर्पण भाव की ऊँची सिद्धि साक्षात् दिख रही थी..

पर यह सब होने पर भी जिसे विगई से छूटने की तीव्र तमन्ना हो उसे इस तरह बीच में आंबिल छूटे, वह भी कोई बिमारी या कमजोरी के बिना ही, सिर्फ बाहर के कामचलाउ विद्यागुरू के आदेश से - वह सहन तो नहीं होगा ही ना ! और इस मुनिवर

के नियम में तो मुझे पक्का विश्वास था कि उनको अच्छा तो नहीं लगा होगा । भले फिर उन्होंने प्रसन्नता से स्वीकारा वह पूरा अलग गुण कहलाता है ।

परंतु अंदर की त्याग भावना भी स्वयं का बल तो बताती ही है ना ? इसलिए... ऐसी सब घटनाएँ बनते वह मुझसे शायद थक भी जाते होंगे ऐसा मैं मानता था ।

... ऐसे करते-करते

पोने तीन महीने बीत गए ।

हम तब अहमदाबाद - लक्ष्मीवर्धक संघ में

(यह लिख रहा हूँ, 4 वर्ष के बाद । कैसा योग कि यहीं लक्ष्मीवर्धक संघ में लिख रहा हूँ ।)

उनके गुरूमहाराज साहेब की चिट्ठी में सूचना के रूप में अनुज्ञा आयी थी...

'अभी कलिकुंड आने की जरूरत नहीं है.. पढने का अच्छा चल रहा है, इसलिए वहाँ पर ही रहो हम ओली के बाद उस तरफ आनेवाले ही हैं तब मिलेंगे...' जैसे .... हेमविजयजी का तो मोतीया ही मर गया ।

बहुत मुश्किल से उन्होंने पौने तीन महीने निकाले थे उसमें भी दूसरे पंद्रह-बीस दिन कहाँ से बढ गए ?

दूसरी ओर, पू.आ.श्री यशोविजयसूरि महाराज साहेब की वाचना भी थी...

उस बहाने से भी उन्हें तो खुद के गुरूदेव श्री कितने जल्दी मिले ? वहीं साधना था ।

मुझे बताया ''गुरुजी ! सिर्फ 35 कि.मी. दूर है और (वाचना का) ऐसा संयोग फिर कब मिलेगा ... ?''

आपकी बात सच है । वाचना जोरदार चलेगी । पर अब आपके गुरूमहाराज साहेब की इच्छा 'आप यहाँ पर रहो' ऐसी है, तो भले फिर ओली के बाद मिल जाएँगे ।''

''अच्छा'' - उन्होंने अनिच्छा से भी स्वीकारा !

- परंतु पीछे से मुझे ही विचार आया कि

'दूसरे भी उनके अमुक महात्मा वाचना के लिए जानेवाले हैं ।' मैंने भी साहेबजी की वाचना मेमनगर + लक्ष्मीवर्धक में दो दिन सुनी थी, तब मुझे भी अति रोचक असरकारक लगी थी... ऐसे महापुरूषों के पास से जो पंद्रह दिन सतत अमृतपान करने का मिलता हो तो वह भी आध्यात्मिक विकास में एक महत्व का कार्य करता है ।

- पढने का तो बीस दिन के बाद भी होगा...

- पूज्य आचार्यदेवश्री के आशय को भी अडचन न आए, पीछे से भी पढाने का तो फिर हो ही जाएगा ।

- कदाचित् यह महात्मा वहाँ पर जाकर दिल खोलकर खुद के गुरू महाराज साहेब को सब बात करें और वह सुनते साहेब को लगे कि उन्हें अब उनके साथ में ही रहना है...

.. तो वह निर्णय भी निःसंकोच ले सकते हैं, यहाँ पर रह जाए तो फरक पडेगा !

-मानो कि,

एक बार वहाँ पर मिलकर पुनः दूसरी बार उनके गुरू महाराज भेजे तो उनके अभिगम में बदलाव आ जायेगा... और गंभीर होकर पढ सकेंगे... और आत्मीयता से रह सकेंगे !

ऐसा विचार करके... मैंने एक दिन पाठ शुरू होने से पहले ही मेरा निर्णय सुना दिया..

''आप दो को कल ही यहाँ से विहार करके कलिकुंड वाचना में पहुँचना है ।''

''क्यों साहेब ? क्या हुआ ? आप तो 'ना' बोल रहे थे ?''

''हा ! परंतु अब यह फाइनल !''

''मुझे रहने में कोई मुश्किल नहीं है ... पूज्य गुरूदेवश्री की भी इच्छा थी कि यहाँ पर रहना ही है तो भले! ओली के बाद बात..

कदाचित् 'उनके मन को शांति मिले उसके लिए मैंने ऐसा निर्णय तो नहीं लिया ना ? ऐसी आशंका से उन्होंने खुद का समर्पण + स्वीकार की तैयारी बतायी ।'''

परंतु मैंने उन्हें भिजवाने में ही उचित समझा ।

''पूज्य गुरूदेवश्री को कुछ कहना है ?'' स्वयं के अभिप्राय को लेकर जाने की गिनती से उस महात्मा ने मुझे पाठ के बाद पूछा ।

तुरंत पाट के ऊपर रहे हुए कागज में से एक छोटा टुकडा फाडकर... उसमें,

95%
98%

इतना लिखकर देते हुए कहा-

''बस, यह दे देना ! सब समझ जाएँगे !''

इस प्रकार से वे स्वयं के बडे गुरूभाई के साथ चैत्री ओली के समय खुद के गुरू को मिलने के लिए मेरी अनुज्ञा लेकर फागण वद 13 को शाम को निकले ।

मुझे लगा कि, 'वह अब फिर से नहीं आएँगे ।'

पर...मेरी धारणा गलत निकली ।

ओली के बाद पारणे के दूसरे ही दिन शाम को 'निसीहि' के गंभीर उच्चार के साथ उन्होंने हमारी निश्रा में प्रवेश किया ।मैं आश्चर्यचकित हुआ, खुश भी हुआ।

''पधारो'' कहकर मैंने उनका स्वागत किया ।

''शाता है ?'' - बहुत भाव से उन्होंने भी पृच्छा की...

''हा !'' शाता कहकर वापस आने का कारण जानने के लिए आगे बढे ।

'क्यों ? फिर आ गए ?'

'जी'

''बहुत जल्दी से विहार किया ?'' आश्चर्य के साथ अपेक्षित जवाब की राह देखते पूछ लिया ।

''हाँ जी ! क्या करूँ ? पू. गुरूदेवश्री ने कहा था कि तुरंत पहुँच जाना । 1 भी दिन बिगाडना मत... आपको फिर शांति से सब बात करता हूँ ।''

और 1-2 दिन के बाद रात को बैठे, तब उन्होंने उनके प्यारे गुरूदेव-उनकी गुरू माँ के साथ के पौने तीन महीने के बाद पुनमलन की घटना का पूरा चित्र बयान किया

''हम यहाँ से (लक्ष्मीवर्धक संघ में से) शाम को निकलने के बाद बीच में 1 ही दिन गोचरी की, तीसरे दिन सुबह कलिकुंड (तीर्थ में) पहुँच गए.. परंतु पू.गुरूदेवश्री तो पधारे ही नहीं थे.. लंबा खींचकर जाने का अफसोस हुआ, परंतु इतने ही समय में (उनके गुरूजी के साथ में रहते मुमुक्षु) अमितभाई वहाँ पर दिखे और पता चला कि 'पू.गुरूदेवश्री (धोलका) गाम में पधारे हैं ।'

हमें मजा आ गया.. थकान सफल जैसी लगी ।

तुरंत सब उपाधिलेकर हम दोनों (वह और उनके वडील गुरुभाई) वहाँ से निर्दोष गोचरी साथ में लेकर निकले (निकलते-निकलते) लगभग साढे दस-पौने ग्यारह जैसा हो गया होगा..

एक तरफ,

तीन महीने के (तपो-) वन-वास के बाद पूज्यपाद गुरूदेवश्री के साथ मिलने का अवसर, बस नजदीक आ ही गया है.. उसके आनंद-उल्लास का पार नहीं है, और,

दूसरी तरफ,

'पहुँचने में जो देर हुई और वहाँ से गोचरी (वहोरने) चले गए, तो मुश्किल हो जाएगी ।' ऐसी शंका होते मन में आशंका और व्याकुलता बढ रही थी..

इन दोनों के उहापोह में हम जैसे एक्सप्रेस क ी स्पीड से दौडते हुए पहुँचने ही वाले थे....

('हम एकदम उल्लास के साथ.. उपाश्रय में प्रवेश करेंगे..'

पहले तो हमारे निसीहि-निसीहि का सबको श्रावणप्रत्यक्ष होगा..

अब तक तो सभी को आश्चर्य हो न हो उससे पहले तो तुरंत हमें साक्षात् देखते ही.. सभी महात्मा खडे होकर.. खुश-खुश होकर सामने आएँगे..

दोनों गुरूदेव श्री सामने ही बैठे होंगे..

पू. गुरूदेवश्री एक घुटने को डेस्क के ऊपर रखकर रखी हुई कोई पुस्तक या संशोधन का मेटर पढ रहे होंगे, और तुरंत मुँह को ऊपर करके वात्सल्य से स्मित करते हुए दिखेंगे ।

पू. गुरूदेवश्री स्वयं के हाथ में रही हुई बुक-पेन या सालों पुराने स्रोत पाठ के कागज को टेबल के ऊपर रखकर, आसन के ऊपर रखी हुई घडियाल पर एक नजर डालकर तुरंत मानो कि हमें आवकार देते हुए व्यापारमुक्तदेह के साथ विस्मय से युक्त मुख के साथ हमें दर्शन देंगे ।

उनका प्रेमपूर्ण-प्यारा-विशाल हृदय मेरे ऊपर के निष्कारण-निबिड-स्नेह-स्पन्दनी से मानो छलक-छलक हो जाएगा.. मुख पर उमडते वात्सल्य में वृद्धि हो जाएगी !

हमें अहमदाबाद ही रूकने के लिए कहा है ! हमने तो विहार भी कर लिया, उसके समाचार भी भिजवाये नहीं हैं । इसलिए एकदम अचानक और वह भी 1 दिन आगे, और फिर आखिर गाँव में हाथ में झोली और तरपणी.. यह सब.. एकत्र हुआ है, इसलिए आश्चर्यद्योतक शब्दों से हमारा प्रेमपूर्वक स्वागत करेंगे.. प्रेम से बुलायेंगे! खुश-खुश दिखेंगे ।

ऐसी सब मीठी-मीठी कल्पनाएँ हमारे मन में हिलोरे ले रही थी ।...

परंतु पूज्य गुरूदेव तो बिल्कुल उदास । रोज की तरह ही शिष्य गोचर लेकर आया है । इस प्रकार से ही मेरे साथ व्यवहार !

मुझे थोडा दुखद लगा.. । पर .. क्या करूँ ?

दूसरा कुछ नहीं, परंतु अब मेरे पू.गुरूदेवश्री को मिलने का आनंद.. गुरूदेवश्री के आनंद के अभाव से हुए चमकारे ने अधिक टिकने नहीं दिया । 'पूज्य गुरूदेवश्री के मिलने के बाद अब सब गौण है ।' यही भावों में था..

दूसरे दिन से वाचना-सत्र चालु हुआ । 16 दिन हुआ उस दरम्यान पूज्य

गुरूदेवश्री के व्यवहार में बहुत बदलाव था, कुछ शुष्कता-दूरी ऐसा सब वह अब ख्याल में आ रहा था । 8-10 दिन में थोडी-थोडी बात करते अमुक बातें हुई..

मेरे मन में तो 'बस रीपोर्ट देकर छुटु..' फिर से जाने की तो कल्पना भी नहीं थी ।

परंतु, उसमें पू.गुरूदेवश्री ने धमाका किया ।

''पढने का अच्छी तरह से चल ही रहा है, तो मेरे अंदर की इच्छा है.. एक चौमासा आपको उनके साथ में करना.. अवसर का पूरा-पूरा लाभ लेकर बराबर गहराई में जाने का प्रयत्न करना ।''

''नहीं गुरूदेव ! आपने उस समय पक्का बोला था कि खाली ढाई-तीन महीने में क्या फर्क पड जाएगा । हम फिर से मिलनेवाले ही तो हैं ।''

अब मैं वापस जानेवाला नहीं हूँ.. पूज्य.. महाराज साहेब को जाना होगा तो भले ही जाएँ.. दूसरे अहमदाबाद जानेवाले हैं ही.. अब ज्यादा मुझे वहाँ पर नहीं जमेगा..

''समझो तो अच्छा ! मेरे अंतर की भावना है ।'' पू. गुरूदेवश्री ने बहुत उदास भाव में रहकर खुद का मक्कम अभिप्राय बतलाया..

''गुरूदेव । मुझे दूसरा कुछ पता नहीं । जितना पढना होगा उतना होगा पर आपके बिना नहीं जमता । आपको पता तो है । कितनी बार बोलू - आप क्यों मुझे हैरान कर रहे हैं !!''

''वहाँ पर रहने में दूसरी कोई भी तकलीफ नहिं है सभी महात्मा एकदम उत्तम हैं । एकदम घर जैसा हो गया है ! ऐसा लगे भी नहीं कि कोई अलग ग्रुप है ! वह सभी भी एकदम आत्मीयता से ही सभी बातो में व्यवहार करते हैं ।''

इसलिए वह सब कुछ बात नहीं है । पर बस ! मुझे वहाँ पर या दूसरे भी जगह आपके बिना सेट नहीं होता । मैंने कहा

''ऐसा मत करो । समझो । मैं कुछ भी बोलू तो विचार कर ही बोलूँगा ना ।''

और.. विजयजी को मेरे साथ में ले जाना पडेगा । वहाँ (जोधपुर) में व्याख्यान हो, शिबिर हो.. इसलिए साथ में संभालने वाले भी चाहिए । आपको पता ही है, मुझसे सब अब हो नहीं पाता । इसलिए यहाँ से आपको एकम को सुबह में ही विहार करना है.. (दूसरे महात्मा निकलनेवाले हैं ही, उनके साथ ।)

मैं दुविधा में पडा । अंदर से बहुत संतप्तता का अनुभव हो रहा था थोडी भी इच्छा नहीं थी ।

विचार से ही विहलता धेर लेती ।

पूज्य आचार्य श्री यशोविजयसूरि महाराज साहब को पूछने का मन हुआ । ''साहिबजी कुछ रास्ता बताओ.. मुझे बचाओ..''

परंतु वह तो 'गुरुसमर्पण के भारे हिमायती.. वाचना वगैरह में भी बहुत बार यही बात होती रहती है.. तो उनके पास कहाँ ऐसे मार्गदर्शन की अपेक्षा रखे ।'

परंतु उस समय डूबते को तिलक का सहारा ही काफी ऐसी हालत थी ।

इसलिए कुछ भी लंबा सोचे बिना पूज्य यशोविजयसूरिजी को पूछ लिया । ''साहेबजी । मेरी इच्छा नहीं है और गुरूदेव बिना जमेगा भी नहीं..'' वगैरह मेरी मनःस्थिति बतायी.. साथ में पू.गुरूदेव की भावना भी बतायी.. परिस्थिति को उजागर किया । परंतु जवाब वहाँ से यही आया कि **''गुरू जो भी बोले । वहीं सच्ची सेवा.. सच्ची निश्रा है ।''**

आखिर पूज्य गुरूदेवजी की दृढता को देखकर मुझे जिद छोडनी ही पडी !

* किस रीति से अनिश्चित बाबत में निर्णय लेने..
* तप-त्याग के विषय में निर्णय कैसे लेने का..
* कितना वापरना-क्या वापरना ..?

वगैरह-वगैरह मैंने मन की दुविधा को दूर करके भारी हृदय से पारणे के दिन सुबह में ही मुझे कलिकुंड और वहाँ बिराजमान मेरे सदगुरूदेवश्री को छोडकर अहमदाबाद आना ही पडा..

''कुछ नहीं । अब कारतक सुद पुनम तक सब भूल जाना है ।'' ऐसा मन को समझाया ।

ये मुनिराज ने बात पूरी की..

बस, तब से लेकर आज तक वह महात्मा, यह मुनिराज, वह धन्ना अणगार मेरे साथ है, यह मेरा सौभाग्य है ।

तीन-चार साल में उन्होंने खुद के गुरूदेवश्री के पास लौट आने के लिए विनंती पत्र के द्वारा और एक बार वरमाणतीर्थ में मिलने का हुआ तब रूबरू में भी बहुत की, वह मुझे ख्याल में है । तो भी उन पूज्य आचार्यदेव की गजब की उदारता के फलस्वरूप हर समय एक्सटेन्शन होता ही रहा । मुझे भी वह इच्छित तो था ही !

मुझे आश्चर्य के साथ कहना पड रहा है कि इन मुनिवर का इस प्रकार से स्वयं के पू. गुरूदेवश्री से अलग होना परंतु उनके लिए एक टोच समर्पणभाव की सिद्धी थी ! क्योंकि मैं तो अब जानता ही हूँ कि उनका स्वभाव एकदम जिद्दी चिकना.. सभी बात

में !

मेरे पास आए साढे तीन साल ऊपर हो गए । उस दरम्यान तप, त्याग, भक्ति, उत्सर्ग आचार वगैरह बहुत सी बाबतों में, बहुत बार मैंने उनकी जिद्द को साक्षात् देखी है । पूरी छान-बीन की है इसलिए खुद के ही गुरूदेवश्री हो तब तो फिर यह स्वभाव ज्यादा स्वाभाविक रीति से खुल्ला होगा, वह सहज है और इसलिए ही यहाँ पर आने से पहले भी बहुत खींच-खींचकर फिर ही आखिर में मानना पडा तब माना था । वह बात उनके ही गुरूदेव श्री पू.आचार्य के मुँह से जानी थी ।

और वही बात की पुष्टि फिर से इस बार हो गई । हमारी बहुत विनंती उससे थी उदारता वाले वह आचार्य भगवंत स्वयं के पूरे परिवार के साथ बीस दिन तपोवन में स्थिरता करने पधारे । उसके बाद जब पूज्यश्री राजस्थान तरफ चातुर्मास के लिए विहार करनेवाले थे उसके आगे की दो रात में हमारे साथ के महात्माओं ने जो अनुभव किया, वह सुनते ही मैं खुद भी एकदम अवाक हो गया आनंदित हुआ। वह गुरू-शिष्य की जोडी के बीच अतिगाढ संबंधों के साक्षात्कार से..

बात ऐसी हुई कि विहार का दिन नजदीक आया इसलिए हैम.वि.ने फिर से जिद्द की - इस बार तो कोई भी हिसाब से मैं आपके साथ में ही आऊँगा !

''क्यों ?आपको यहाँ पर कोई तकलीफ है ? जो भी हो वह मुझे कहो ।''

''नहीं, मुझे कुछ पता नहीं बस मैं तो यहाँ पर नहीं रहूँगा ।''

''ऐसा मत करो, आप पहले तो कैसे थे सभी छोटी-छोटी बातें मुझे कहने का भूलते नहीं थे ।''

तो इस बार क्यों नहीं बोल रहे हो, जो भी हो वह कहो तो पता चले ना ?

परंतु हैमविजय जी भी जानते थे कि,

'मुझे आपके साथ जैसे जमे वैसा दूसरों के साथ नहीं जमता ।'

अथवा तो 'आपको जितनी अपेक्षा है उतना मैं नहीं पढ सकता ।'

या फिर,

'मेरे यहाँ रहने से आपका नाम कितना बिगडेगा ।' ऐसी सब बहानेबाजी से उनके निस्पृह, एकांत हितद्रष्टा गुरूवर्य तो कुछ माने जैसे नहीं थे ।

इसलिए ही उन्होंने बराबर निश्चित कर दिया था कि हर वक्त के जैसे इस वक्त भी तकलीफें बताऊँ और फिर समाधान भी दे दे, और वह मान लेना पडे.. ऐसा नहीं होने देना है.. इसलिए कोई भी कारण बताये बिना ही सीधा मक्कम निर्धार ही कहना है

इसलिए ज्यादा कुछ बोल नहीं सके, 'आप मुझे क्यों हैरान कर रहे हो ?' बस, इतना बोलते-बोलते सीधा खुद के ही प्राणप्यारे गुरूदेवश्री की गोद में सिर रखकर बिलख-बिलख कर रोने लगे.. सतत 10-15 मिनट तक । स्वयं कि आँसू रूप उभरती विरहवेदना को वे रोक नहीं सके ।

परंतु वह आचार्य भगवंत भी..

एक तरफ, वात्सल्य के स्वामी होते हुए भी दूसरी तरफ स्वयं के हीरे जैसे समपत शिष्य का हित किसमें है । वह परखने में कुशल कारीगर भी थे । इसलिए एक गीतार्थ और अनुभवी अधिकारी, जिनशासन के सुगुरूत्व को अच्छी रीति से ग्रहण करनेवाले ऐसे वह आचार्य भ.ने खुद की जवाबदारी को वहन करने की अदा में एक ही बात की..

''देखो आज लेट हो गया है, ज्यादा आर्तध्यान अच्छे के लिए करो तो वह भी दोष है मुझ पर विश्वास है ना.. ? आपका अच्छा होगा, वैसा ही करूँगा । अब संथारा कर लो फिर कल बात.. मुझे भी कब से नींद आ रही है..''

ऐसा करके समय को पूरा करने का उपाय आजमा लिया

वर्षों से पूज्य गुरूदेवश्री का स्वभाव, उनकी नीति को बराबर पहचानते हेम.वि. मन को समझाने लगे कि, "delay is deny" आखिर कल भी यहीं निर्णय होगा कि 'आपको यहाँ पर ही रहना है..'

इस प्रकार अंतिम दिन पसार हो रहा था और शाम को फिर से मन बेचैन हुआ.. 'अब तो हद हो गयी.. तीन-तीन साल हुए इस वर्ष तो गुरूदेवश्री के साथ ही चातुर्मास करना है ।' ऐसी धुन लगी.. परंतु आशा क्षीण हो रही थी इसलिए मन में उदासीनता छा गयी । रत्नाधिक वगैरह को जल्दी-जल्दी वंदनादि करके सूर्यास्त के आस-पास एक बाजु की रूम में जाकर संथारा करके सो गए । 'गुरूदेव को छोडना पड रहा है' उसकी गमगीनी में बहुत-बहुत बेचैनी में चढकर भूत-भावि के विचारों में खो गए..

बहुत समय के बाद तलाश करने के बाद.. स्नेह से भरे हुए हृदय के साथ वे कर्तव्यनिष्ठ सूरिदेव उनके पास सामने से जाकर पहुँचे ।

परमविनयी ऐसे हेमविजयजी उस समय इतने निराश हो गए थे कि खुद को मिलने (या मनाने) आए परमोपकारी पू.गुरूदेव का अभ्युत्थान रूप विनय (आए तब खडे होना) भी कर नहीं सके.. आखिर में हाथ पकडकर उनको बिठाकर फिर से बात की..

"क्यों ऐसा कर रहे हो ? मुझे कुछ कहोगे तो कुछ पता चले ?"

"मैंने कहा तो था कि इस साल मुझे आपके साथ आना है । फिर अगले साल आप जैसा कहोगे वैसा करूँगा ।" ऐसा कहकर हेमविजयजी ने सामने से वादा दिया । परंतु गुरू किसको कहते हैं ? "मैं तुम्हें बोल रहा हूँ ना । मेरा इतना मानो इस साल पढाई कर लो अगले साल मैं देखूँगा ।"

ऐसा कहकर खुद की बात दृढता से बता दी ।

और, अब बहुत खींचने में मजा नहीं है ऐसा समझकर खुद के साथ रहने की भावना को असमर्पणता का स्वरूप देकर हेम.वि.ने कह दिया - मैं माननेवाला नहीं हूँ आपको दूसरा जो करना हो वह करो । और उनकी योग्यता के विश्वासु वह करूणामूत गुरूदेव ने बाहर से अतिउग्र आवेश में आकर कहा..

"तो अच्छा, आपको मेरे साथ में रहना है ना । उसमें ही आपका मोक्ष हो जाएगा ना । मेरी बात सुननी नहीं है और बस समझ बिना एक जिद्द लेकर बैठे हो तो भले चलो साथ में और आपको जैसा जीना हो वैसा जियो.. मैं अब तुम्हें कुछ भी नहीं कहूंगा । आप आपकी रीत से स्वतंत्र हो । आपको जैसा ठीक लगे वैसा करो अभी से कुछ भी मुझे पूछना नहीं है आपको खुशी हो वैसा करो.."

हेम.वि. तो देखते ही रह गए.. क्या बोलें ?

सिर सीधा गया पू.गुरूदेवश्री के गोदी में.. 'मिच्छामि दुक्कडम्' बोलते फिर आँखों का बरसना चालू हो गया.. 5-7 मिनट तक रूकने का नाम नहीं..

अंत में आश्वासन देकर आश्रितवत्सल आचार्यदेव ने कठोर होकर भी खुद के लाडले शिष्य को विदाय की हितशिक्षा दी.. हिम्मत देकर स्वयं की भावना बतायी और.. उस रीति से "यहाँ पर रहकर अच्छे से अच्छी पढाई हो जाये तो आगे बहुत-बहुत लाभ होगा, मुझे भी अत्यंत संतोष होगा.. मेरी उसी में ही विशेष प्रसन्नता है ।" इत्यादि कहकर प्रेमाल हृदय से शुभाषिष की झडी बरसायी ।

अजबगजब का 'गुरूत्व' निभाया ।

प्रतिक्रमण करके हम सभी ऊपर गए तब तक उन दोनों आत्मीय गुरू-शिष्य की गोष्ठी (बातें) पूरी हो गयी थी ।

पूज्य आचार्य भ. स्वयं के संथारे पर पधारे । अंतिम रात थी.. इसलिए मु.शीलरक्षित विजय ने शुरूआत से लेकर सारी बात बतायी ।

हेम वि. के दु:ख का भार कम करने की जवाबदारी सौंपने का महव का काम

किया.. ''मेरे बिना बडी मुश्किल से तीन वर्ष तो रहे.. और अभी भी इसे यहाँ पर रखकर जा रहा हूँ इसलिए कभी-कभी मेरी बहुत याद आने से उदासीनता आ जाए तो संभालना। मुझे खास समाचार देते रहना।'' वगैरह नेट्वर्क सेट कर लिया।

ये सभी बातें मु.शीलरक्षित विजयजी ने तुरंत मुझे आकर बतायी।

सचमुच, हेम वि.की गुरू के साथ में ही रहने की दृढ भावना का बलिदान देने की तैयारी, उनके पीछे उनका समर्पण भाव, और मेरे साथ रहकर मेरे प्रति भी बहुमान भाव, यह सब देखकर मेरा हृदय तो भीगा-भीगा सा हो गया।

इससे ज्यादा भी पूज्य आचार्य भगवंत की उदारता, सरलता, इतना बडा भोग देने की तैयारी नहीं, पर तमन्ना, स्वयं का अपयश हुआ, हो रहा, या होगा वह जानकर भी उसे गौण करने की महानता। यह सब देखकर आँखें नम हो गई।

''क्या कर रहे हैं हेमविजयजी ?''

''पता नहीं, देखकर आता हूँ।''

''नहीं कुछ काम नहीं है परंतु इतना कहना जरूरी है कि..
आखिर में उनके गुरूदेव के पास प्रसन्नता से थोडी देर बैठें...''

''हा। कहकर मु.शीलरक्षितवीजयजी उन्हें ढूँढने गए.. देखा तो वहीं एक बाजू रूम में खिडकी के पास खडे-खडे विलख-विलखकर रो रहे थे। आश्चर्य चकित होकर आधी-एक मिनट तक पीछे ही खडे रहे। उन्होंने कभी भी इतना भावुक होते हुए उन महात्मा को देखा नहीं था। क्या करूँ ?'' कुछ सूझ नहीं रहा था।

तो भी धीरे से उनको बुलाकर.. मेरा संदेशा पहुँचाया.. उन्हें भी वह बात दीमाग में बैठी.. खुद के गुरूदेवश्री का विहार हो और फिर अंतिम रात ऐसी दर्द से भरी बीती थी ऐसा मन में लेकर जायेंगे तो चिंता रहेगी।

ऐसा सब हो तो 'ऐसे महाहितैषी पूज्य गुरूदेवश्री की कितनी बडी आशातना होगी.. ?' ऐसा सब स्वयं समझकर थोडी देर में स्वस्थ होकर संथारे हुए पूज्य गुरूदेवश्री के पास जाकर बैठ गए।

रोना तो आ रहा था। तो भी गुरू की प्रसन्नता को साधने का बहुत प्रयत्न करके 'स्वस्थ हुँ' ऐसा दिखाने के लिए तैयार होके बैठे थे, आँख खुले उसका इंतजार कर रहे थे।

8-10 मिनिट में आचार्य देवश्री की आँख थोडी खुली और फिर अंतर से क्षमायाचना की.. गुरूदेवश्री को चिंतारहित बनने की विनती की। और पूज्य आ. भ.

भी समझ गए कि अब लगभग मुश्किल नहीं आएगी । खुद के शिष्य का सद्‌भाव-स्वभाव-स्वीयभाव और समर्पण भाव पूरा जानते थे.. हादक आशीर्वाद देकर सिर पर हाथ रखकर.. आत्मीयता से ओतप्रोत बने हुए दो शब्द कहकर तुरंत संथारने की आज्ञा की.. पुनःसंथार गए ।

सुबह 6-7 कि.मी. तक छोडकर हेम.वि. फिर से मेरे साथ सेट हो गए । अंत-अंत में निकलते खुद के गुरूदेव को 'सहर्ष स्वीकार किया है' वैसा लगे उस रीति से पूर्ण संतोष दे दिया ।

मुझे लगता है कि गुरू से दूर होकर आज्ञापालन की और समर्पणभाव की श्रेष्ठ साधना करने में आती हो उसका दृष्टांत इसके जैसा दूसरा कहीं पर भी नहीं मिलेगा । यह आज्ञांकितता ही उनके गुण के विकास में सबसे बडा महव का बन रही है उसमें कोई दो मत नहीं है ।

चलो, अब वह महात्मा के जीवन की विशिष्टताओं को देखिए । तीन चार साल में अगणित प्रसंग ऐसे बने हैं कि **'जिससे मैं भी चमक गया हूँ'** पर यह लिखते समय सब तो याद नहीं आएगा । तो भी संभव इतनी मेहनत करके सब कुछ लिखने का प्रयत्न करूँगा..

परमेश्वर । मुझे स्मरणशक्ति इस विषय में तीव्र मिले ।

मुझे लेखनशक्ति इस विषय में तीव्र मिले

मुझे संवेदनशक्ति इस विषय में तीव्र मिले

जिससे मेरे हजारों संयमीओं के मन में मैं ऐसी श्रद्धा बिठा दूँ कि साधुता इसे कहते हैं ऐसा जीना चाहिए । अप्रमतत्ता इसे कहते हैं और इस काल में भी ऐसा जीवन, ऐसी अप्रमत्तता, ऐसा वैराग्य, ऐसा पारतन्य.. सब कुछ संभव है ही । काल को दोष देते हैं, परंतु उसके साथ-साथ अपने हृदय का भी अपनी अवनति में बहुत बडा भाग है । यह लेश भी भूलते नहीं..

यह हुई भूमिका ।

* * * * *

अब मुख्य आत्मकथा शुरू !

निर्दोष गोचरी के गवेषक

पिंडनिर्युक्ति के अंत में पूज्य भद्रबाहुस्वामी महाराजा फरमा रहे हैं कि.. जो साधु या साध्वीजी भ.गोचरी-पाणी-वस्त्र वगैरह की शुद्धि (निर्दोषता) को संभालते नहीं हैं, वह अचारित्री (चारित्र बिगैर के) है, उसमें कोई शंका रखनी नहीं चाहिए।

हेम.वि.ने यह शास्त्रवचन आत्मसात् किया है । उनके गोचरी वगैरह की निर्दोषता की संभाल के छोटे-बडे भरपूर प्रसंग.. ढेर सारी बातें.. हमें जानने जैसी है । हमने तो वह सब खुद देखा है । अनुभव किया है । सचमुच हमारा सिर उनके सामने झुक जाता है वैसा अनेक बार संवेदन हुआ है ।

सब लिखना है.. जितना-जितना याद आएगा उतना लिखूँगा... लिखते ही रहूँगा ।

और यह - 'गोचरी वगैरह की शुद्धि' सिवाय दूसरे भी विषयों की अजब की बातें हमें लेनी है.. गजब के प्रसंग देखने हैं ।

उसके पहले एक सामान्य परिचय:

इन महात्मा को अभी शायद 75 ओली हो चुकी थी । पक्की संख्या तो किसी को भी कहते नहीं हैं । वह तो साथ में रहकर अंदाज आ जाता है इसलिए इतना भी पता चले । उसमें-यहाँ पर आने से पहले हेम वि. उनके गुरूदेव को कहने पर सिर्फ 8-10 ही पारणे करते थे । ग्यारहवें दिन से तो फिर से उनकी ओली चालु हो जाती थी । यह 8-10 पारणे भी उनके गुरूदेवश्री के आग्रह के कारण बाकी उसकी भी तैयारी नहीं थी ।

मेरे पास आने के बाद मैं तो ज्यादा पारणा कराने की इच्छा वाला । जल्दी अनुमति देता नहीं था, मेरी निश्रा में आने से ज्यादा पारणा करने की ना तो नहीं बोलते हैं, परंतु आठवें दिन से उनका मुख उदास हो जाता है । मुझे पता चल जाता है कि 'अब पारणा करना उनके लिए जहर के समान है ।' तो भी मैं जिद करके उनके पारणे चालू रखता था ।

आखिर में उनके अलग-अलग बहाने शुरू हो जाते थे ।

अब आंबिल की ओली ले लूँ, तो मुझे आसो-चैत्र ओली के पारणे के साथ ही मेरा पारणा आएगा ।

इस दिन से आयंबिल शुरू करूँ तो, तो मुझे सुद पंचमी और आंबिल का अंतिम उपवास एक ही दिन आता है, तो उपवास साथ में करने नहीं पडेंगे ।
हाल आंबिल जल्दी कर लूँ तो पर्युषण के समय फिर से आंबिल हो सकेंगे (यानि, पजुषण के दिनों में विगईयाँ वापरनी नहीं पडेगी ।)..

अब हम चातुर्मास में स्थिर है तो स्थिरता में आंबिल ज्यादा अच्छे होंगे । फिर दाल वगैरह का भी फिक्स नहीं रहता ।

अब आंबिल कर लूँ तो दिवाली वक्त में पारणा आएगा, तो शरीर को टोनिक भी मिलते रहेगा । ऐसे ऐसे बहाने से मैं शुरूआत में ठग जाता और ओली के लिए अनुमति देने का मन हो जाता था.. परंतु बहुत सारे अनुभव के बाद मुझे 100 प्रतिशत अनुभव हो गया कि उनको पारणे के साथ पारणा.. या

'दो उपवास न करना पडे' उसके साथ था..

'पर्युषण में विगईया वापरनी न पडे' उसके साथ या

'विहार में आंबिल न जमे' उसके साथ कुछ लेना-देना नहीं है ।

और दिवाली की मिठाईयों से कुछ भी मिलता पोषण उससे कोई निस्बत नहीं है । उनको निस्बत है **यह सभी के त्याग** के साथ । उनको निस्बत है, **वैराग्य** के साथ । **अनासक्ति** के साथ ।

और उसके लिए ही, 'कैसे करके विगई से छुटकारा जल्दी मिले.. ?' और ज्यादा से ज्यादा आंबिल करने को मिले ।' बस, यही उनके लिए महव का है उसके लिए ही ये सभी बातें हैं..
ऐसे तपस्वी की.. अब, हम गोचरी की गवेषणा देखते हैं ।

(1) यह महात्मा की इस बाबत में चिकनाई इतनी ज्यादा होती है कि कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि यह महात्मा अच्छे भाव से भी जो कुछ भी कर रहे हैं वह निर्जरा के बदल मोहनीय वगैरह कर्म का बंधतो नहीं करते होंगे ना । मैं ऐसा नहीं बोल रहा कि वह गलत ही कर रहे हैं परंतु कभी व्यवहार से भी अनुचित लगे इतनी सब गोचरी शुद्धता की सावधानी रखते हैं ।

एक ही उदाहरण इसके लिए काफी है । दो साल पहले उनको अचानक ऐसी

शंका हुई की पालीताणा का आंबिल खाता हो या अहमदाबाद के झवेरीवाड-दशापोरवाड-ओपेरा का आंबिल खाता हो या फिर सुरत-मुंबई के गोपीपुरा-कुंभार टुकडे की बात हो वह सभी जगह में (बळवण) पक्का नमक करने में आता है उसका उपयोग करनेवाले चतुवथ संघ है पर ज्यादा प्रमाण में साधु-साध्वीजी ही कर रहे हैं। श्रावक तो लेने वाले कितने मिलेंगे ? और समझो 80% - 20% के बडे माजन से कदाचित् मिश्र ना हो, तो भी आखिर 30-40% साधु-साध्वीजी भगवंत और 60-70% श्रावकों में उपयोग हों तो इस तरह भी पुरे भारत में बहुत जगह पहुँचाता यह सब बडे स्थान का पक्का नमक तो मिश्रदुष्ट ही गिना जाता है, इसलिए वह किस तरह चलता है।

ऐसा होने से वे पक्का नमक खुराक में नहीं लेते, परंतु आंबिल में रोज आगे-पीछे औषधरूप लेते थे।) वह भी बंद कर दिया। सिर्फ कोई स्थानिक रसोडे में ऐसा विश्वास हो कि यहाँ पर श्रावक वगेरह के लिए ही आरंभ है और संयमीओं का विचरण कम होने से यहाँ पर जो भी बन रहा है, वह संपूर्ण निर्दोष है तो ही वे लेंगे।

परंतु आगे फिर उन्हें अंदर से संताप होने लगा कि इतने सालों से इसे निर्दोष मानकर इसका उपयोग किया और इसकी आलोचना तो नहीं ली। इसलिए तुरंत पत्र के द्वारा स्वयं के गुरूदेवश्री को पुछवाया.. वहाँ से स्पष्ट जवाब नहीं आया और ऐसा कहा कि "पूज्य बडे गुरूदेवश्री को ही पुछवाना पडेगा।" इसलिए उनकी चिंता बढी और सीधा पत्र गया। बडे आचार्य भ. के ऊपर। और उसमें अपनी आज तक की गणना लिखकर पुछवाया कि - "अब क्या मानना है।"

इस ओर वह पूज्यपादश्री भी महासंयमी, उत्कृष्टचर्या के पालक थे। साथ-साथ में तर्कादि का टैलेन्ट भी जबरदस्त और शास्त्रों के सालों के परिशीलन के बाद का स्पष्ट औरक विशदबोधभी इतना ही जोरदार और इस बात से यह महात्मा भी पुरे पूरे जानकार।

इसलिए इन महात्मा के लिए चरणकरणानुयोग की चर्चा हो या द्रव्यानुयोग की द्विधा हो कोई भी विषय में अंतिम निर्णायक वे ही थे।

थोडे दिनों के बाद पूज्य आचार्य भ. का विस्तार से सभी खुलासे के साथ जवाब आया कि - 'ये सभी प्रख्यात स्थान पक्के (नमक) (अळवण) मिश्र दोषवाले नहीं हैं..'

परंतु उनको वह दिमाग में बैठा ही नहीं.. इसलिए तुरंत फिर से पक्का नमक

उपयोग में लेने के लिए मन तैयार नहीं हो रहा था । थोडे समय के बाद उन्होंने विचारा कि स्वयं ही निर्णय लेकर त्याग किया होता तो ठीक था । परंतु अब एक बार पुछवाने के बाद वहाँ से ही आते (लीली झंडी) मैं अगर उसमें शंका रखकर त्याग करूँगा तो भी दोषित ही कहलाऊँगा.. इस तरह उन्होंने पक्का नमक उपयोग में लेना नक्की तो कर लिया और वापरते भी हैं । परंतु अब तक उनके मन में इस मिश्रता की शंका तो बैठी हुई ही है । सिर्फ गुरूजनों का अनादर न हो । उसी कारण से शंका से वापर रहे हैं। (और हा ! शंका का कारण पूज्य गुरूवर्यों के प्रति अश्रद्धा नहीं, परंतु स्वयं की अतिसंकीर्णता है ।)

'उसमें गोचरी के द्रव्यों की निर्दोषता का विचार कितना गहरा और आखिर में वे कहाँ तक कर सकते हैं ।' मुझे यही बताना है ।

(2) ऐसा फिर से दूसरी बार भी हुआ । वहीं महाप्रभावक पूज्यपादश्री की निश्रा में विशाल संख्या में एक स्थानिक संघ में चैत्री ओली की आराधना चल रही थी, हम भी थोडे दिन वहाँ पर ही थे । उन्हें तो 'स्वामिवात्सल्य' जैसे दिन आये हो वैसे । परंतु वहाँ पर भी लोगों की बातों के ऊपर से सब गणित निकालकर स्वयं ही नक्की कर लिया कि-

'10% साधु-साध्वीजी हो तो चलता है यह जो नियम है उसके मुताबिक यहाँ का चलेगा । ऐसा तो नहीं है, इसलिए वहाँ से लेना नहीं है !'

परंतु स्वयं के ही गुरूमहाराज साक्षात् हाजिर हो और उन सभी की गोचरी वहाँ से आती हो, पूज्यपादश्री की अनुभवी दीर्घदृष्टि में 'ऐसे प्रसंग वगैरह में दोष नहीं होता' ऐसा स्पष्ट हो तब वह अलग मान्यता के अनुसार से करे तो वह दूसरों को तो ठीक पर उनको खुद को भी असह्य बनेगा ।

ऐसे तो हमारी वसति (रहने का) अलग ही थी, परंतु उनकी भावना पहले से ऐसी ही थी कि-रोज वहाँ पर जाकर पूज्यश्री को राई मुहत्पत्ति करके फिर ही पचक्खाण पारना है । और उनकी निश्रा में ही गोचरी वापरनी है ।

उसके लिए पहले दिन तो हम सभी को गोचरी वहोराकर, फिर हम सभी को वपराकर एक-डेढ बजे के आस-पास वहाँ पहुँचे । वंदन करके, पचक्खाण लेकर फिर पारकर उन्होंने तुरंत दूसरे महात्मा के पास 1-2 चीजें ऐसी मंगवायी की जिसे कोई साधु-साध्वी लेने वाले कम ही निकलते हैं बस उससे ही आंबिल कर लिया ।

उसमें अंदर तो ऐसा ही था कि ऐसी रीत से करने में कोई निर्दोष नहीं हो जाता ।

क्योंकि विशाल संख्या होने के बावजूद भी चमचे इधर-उधर हो, हाथ लग जाए वगैरह परिस्थिति में दोष लगने की पूरी पूरी संभावना है । तो भी सापेक्षता रहे उसके लिए ऐसा रस्ता निकाला ।

हा ! इतना विवेक तो जरूर कि पहले तो वहाँ पर गोचरी वापर ली फिर खुद के परदादा गुरूदेवश्री को पूछा कि - यहाँ दोषित क्यों नहीं होता ?

सालों के अनुभव और व्यवहारिकता से पुष्ट बना हुआ साहेबजी का रत्नत्रयी का वैभव था इसलिए किसी को भी बैठ जाए वैसी रीति से पूज्यश्री ने उन्हें समझाया कि-

''अनिश्चित संख्या के ऊपर रसोई हो जाए और बहुत सारी आईटम बनती हो फिर अपनी गिनती नहीं होती'' वगैरह..

वे महात्मा भी दाक्षिण्यवाले थे इसलिए तुरंत स्वीकार किया । परंतु फिर से खुद की बुद्धि लगाने लगे या एषणासमिति की सावधानी गिनो.. मन में दुविधा हो रही थी इसलिए मुझसे बात की.. मैंने भी यहीं कहाँ कि ''साहेबजी के कहने के बाद क्या सोचना । तो भी आपको संतोष नहीं होता हो तो स्वयं जाँच कर लो और अगर संतोष न हो तो घरों में से लेकर आ जाना ।''

और ऐसे भी उस दिन वहाँ पर जाकर गोचरी वापरने का सेट नहीं हो रा था ।

उसमें भी दो कारण,

एक, हमारी गोचरी लाने के बाद वहाँ पर पहुँचे तब तक तो बहुत म.सा. का वापरने का हो जाता था ।

और दूसरा, उन्हें पता था कि सहवर्ती महात्माओं को अनिश्चित द्रव्य आंबिल के अनुकूल होते थे इसलिए अगर भक्ति करनी हो तो यहाँ पर ही वापरना पडेगा। अगर उनके लिए अलग लेकर आएँ तो भी चलता है परंतु फिर बढे तो कमभक्ति और कम लाएँ तो भी कमभक्ति होती है इसलिए फिर स्वयं ही सोच लिया कि 'रोज वहाँ पर वंदन - पचक्खाण करके आऊँगा और गोचरी यहाँ पर ही वापरूँगा ।'

उसके अनुसार वे स्वयं आंबिलशाला में गए । दो-तीन जवाबदार व्यक्तियों को पूछा । वह ऐसी रीति से पूछते थे कि सामनेवाले को पता भी न चले कि यह कहना क्या चाहते हैं, उल्टे-सीधे 5-10 प्रश्न ऐसे पूछे कि सामने वाला दुविधा में पड जाता है ।

परंतु इस रीति से पहली बार ही खुद को लगा कि कोई दिक्कत नहीं है । इसलिए वहाँ पर ही वहोरकर बाहर घरों में जाना छोड दिया । उसमें वहोरना तो वहीं कि जो द्रव्य कम वहोरते हो, जिससे अंदर-बाहर दोनों के बैलेन्स बराबर रहे । तो भी स्वयं को

हो रहा है कि निर्दोष भले हो तो भी दूसरे 1-2 व्यक्ति को दूसरी रीति से पूछ लूँ जिससे एकदम पक्का हो जाए । इसलिए वह काम फिर से एक व्यक्ति को सौंप दिया.. ''ऐसी-ऐसी जाँच करके रखना ।''

अंत में, यह सब हुआ और आखिर में उन्होंने स्वयं ही पक्का निर्णय करके छोडा कि ''मैंने 6-7 दिन जो भी गोचरी वापरी है वह एकदम निर्दोष ही थी ।''

दूसरी भाषा में कहेंगे तो ''आप्तपुरूष के पास से साक्षात् मिला हुआ श्रुतज्ञान भी चिंता भावना ज्ञान तक ना पहुँचे'' वहाँ तक वे शांति से बैठते ही नहीं थे ।

सिर्फ चरणकरणानुयोग में ही नहीं, अन्य विषयों में भी इसी रीति से उनकी चाल होती थी । मेरे सामने भी बहुत चर्चा करते थे । तब इतनी चर्चा हो जाती थी कि अंत में मैं ही कह देता था कि अब इतना रखो फिर शांति से सोचेंगे । इस तरह हवाले वाले कितने ही मुद्दे हमारे बीच ड्रो होकर पडे हैं । अभी तो बात चल रही है गोचरी की । उसमें ही दूसरे उदाहरण देखते हैं ।

* * * * *

(3) आंबिल में रोटी या खाखरा लेते हो, परंतु मोन रहित । (घी अंदर डाला हुआ) सामान्य से अब अनिश्चित संयमी निर्दोषतादि के लिए मोनवाले लेते हैं वे-वे गीतार्थ भ.ने उन्हें संमति भी दी है । परंतु यह मुनिवर तो अपवाद का सेवन करे बिना आंबिल करना चाहते हैं । इसलिए आंबिलशाला में जैसी रोटी और खाखरे वापरते हैं, वैसे ही जो घरों में से, (कोई आंबिलशाला से भी) जो संपूर्ण निर्दोष मिले, तो ही वापरते हैं बाकी नहीं ।

ऐसी रोटी वगैरह गुजराती जैनों के घर पर तो शायद ही मिले । अधिकतर तो मोन डालते ही हैं । इसलिए जैनेतरों में से कहाँ पर मिल जाये, तो वह लेकर आएँ । तो भी.. वह भी रोज संभव नहीं होता था ।

और, जो भी विस्तार में साधु-साध्वीजी भगवंतों की स्थिरतादि (रहेठाण) कायम होता हो वहाँ पर लगभग सभी के घरों में लुख्खी रोटी (बिना घी वाली) तो होती ही है,

उनका सामान्य से नियम था कि जिन घरों में सप्ताह में 3-4 बार से ज्यादा कोई भी संयमी का लाभ मिलता हो तो वैसे घर की गोचरी नहीं वहोरते हैं... ।

'जहाँ पर पहले से ही सुपात्रदान का लाभ मिलता ही हो उसी घर में मैं भी जाऊँ उससे अच्छा जहाँ पर कोई भी संयमी का लाभ मिलता न हो अथवा तो एकदम ही

कम-कभी-कभी ही अचानक मिलता हो वैसे-वैसे घरों को ढूँढ-ढूँढकर वहाँ पर लाभ देंगे तो वह ज्यादा अच्छा है ना ..' ऐसा सोचकर अलग-अलग दूर-दूर ऊपर के मालावाले घरों में जाकर गोचरी लाते हैं।

और, ऐसे घरों में भी कम से कम दस-बारह-पंद्रह दिन या कभी-कभी तो महीने-महीने का अंतर रखकर ही जाते थे.. । इसलिए, उनकी गोचरी लगभग 'अज्ञात उञ्छ' की होती थी..

इसलिए 'आंबिलशाला का लेते नहीं हैं' और घरों में चाहे जितना मिले और न भी मिले कुछ निश्चित नहीं..

अंतिम साडे तीन-चार साल से मैं देख रहा हूँ कि.. उनका आंबिल का मुख्य खुराक चावल है। वह कैसे अकेले चावर पर चला रहे हैं, वह मुझे भी पता नहीं है।

* * * * *

(4) ऐसे घरों की ही शुद्ध गोचरी लेकर आंबिल करने का उन्होंने कुछ नया चालू नहीं किया।

और यह सब अंतिम चार साल से चल रहा है ऐसा भी नहीं है।

परंतु उनकी दीक्षा हुई तब से, उपवास के बाद, पहले ही दिन के एकासंणे से यह निर्दोष गोचरी के संस्कार उनको परंपरा में मिले हैं.. और उन्ही संस्कारों को उन्होंने अपनाया है।

साढे बारह वर्ष ऊपर उनका दीक्षा पर्याय हुआ है.. उस दरम्यान उन्होंने लगभग साढे नौ से दश वर्ष जितने तो आंबिल ही किये हैं.. श्री दशवैकालिक सूत्र के जोग से लेकर आखिर श्री महानिशीथ सूत्र तक के जोग भी आंबिल से ही किये हैं.. सिर्फ श्री उत्तराध्ययन सूत्र के जोग में आये आंबिल और फिर गुर्वादेश से आंबिल और निवि से किये.. । यह सभी.. नौ-दश वर्ष के आंबिलों में कभी भी सिर्फ दाल के लिए भी दोषित लेने की छूट नहीं रखी.. उसका विचार भी उन्हें आया नहीं..

आंबिल हो या जोग की निवि हो.. ओर्डर देकर या पहले से निश्चित किये हुए स्थान में जाकर गोचरी लाने की तो बात दूर रही पर.. सिर्फ साधु-साध्वीजी के भक्ति का रसोडा हो या उसमें मेहमान और मुमुक्षुओं का रसोडा हो वहाँ पर भी वहोरने नहीं जाते। अरे। संघ में आंबिलशाला की (मिश्र वगैरह दोषवाली) रसोई भी नहीं वहोरते हैं।

और घरों में भी...... जहाँ पर रोज कोई न कोई म.सा. वहोरने पधारते हैं वहाँ भी 'नित्यपिंड' वगैरह अनेक दोष लगने से ऐसे घरों की गोचरी उन्हें नहीं चलती।

और, संपूर्ण रीति से **'अप्रतिबद्ध'** रहकर रोज के एकासणे के, जोग की नीवि की और ज्यादा आंबिल की गोचरी होती है ।
और यह महात्मा अलग-अलग देश में विचरण कर चुके हैं । दक्षिण गुजरात-मध्य गुजरात-उत्तर गुजरात, सौराष्ट्र, मारवाड और मेवाड तक के विस्तार में जाकर आए हैं, परंतु पिंडविशुद्धि के नियम में कोई विकल्प नहीं !

ऐसा सिर्फ उनके अकेले के लिए नहीं है । जिनशासन के अनेक श्रमण-श्रमणी भ.ऐसी चर्या के आग्रहवाले होते हैं । इन महात्मा के ही ग्रुप से लेकर स्वसमुदाय और परसमुदाय वगैरह बहुत सी जगह पर इसकी झांखी दिखायी दे रही है, इस बात में कोई शंका नहीं है । पर... फिर भी इन मुनिवर जैसी सावधानी और उनके जैसी सूक्ष्मता, उनके जैसी गहराई उनके जैसी परंपरा में खडे होते दोषों के गणित मैंने बहुत कम देखे हैं । कदाचित् नहीं भी देखा ऐसा भी कह सकता हूँ ।

जो कि साथ में छद्मस्थता है । इसमें बहुत बार वह चूकते भी होंगे, चूके भी होंगे तो भी इतना जरूर कहूँगा कि 'गवेषणा का गुण उनके पास सीखने जैसा है..'

* * * * *

(5) घरों में ज्यादा करके हल्दीवाले चने होते हैं । हेम.वि. ऐसे चने लेते नहीं हैं.. आंबिलशाला में (हल्दी बिना के) चने होते हैं परंतु वह क्रीतादि-दोषित होने की शक्यता बहुत-सी जगह पर रहती है । इसलिए.. चने इकट्ठा करने उनके लिए सरल नहीं था और कोई-कोई घरों में मिल भी जाएँ तो फिर काल का गणित लगाते हैं । 15-20-30 दिन पुराने हो तो नहीं लेते !

* तो भी उन्होंने कभी भी छूट नहीं ली।

* न कि हल्दीवाले चने लेने शुरू किए ।

* नहीं मोनवाली रोटी-खाखरे-चालू किये ।

* * * * *

(6) इस तरह कभी-कभी घरों में से खिचडी भी मिले । परंतु उसमें भी लगभग हल्दी डाली हो । खास करके ऐसा विहार में अजैनों के घर में बनता है । तब भी खिचडी वह मुनिवर नहीं वापरते हैं । दूसरे कोई भी आंबिलवाले हो उनकी भक्ति करते हैं । नहीं तो चालुवाले (एकासणेवाले) को दे देते हैं.. परंतु स्वयं तो नहीं लेते हैं ।

'हल्दी को अपवाद का सेवन करना पडे ऐसी मेरी स्थिति नहीं है.. बस, यहीं इनका एक भाव है । ऐसे विहार के दिनों में मुश्किल से कुछ मिलता हो.. बाकी तो,

सिर्फ रोटला - रोटी की ही आशा होती है। परंतु नहीं। इस बाबत में कोई भी समाधान करने के लिए यह मुनिवर तैयार नहीं हैं।'

दूसरे महात्मा गोचरी जाते हैं तब वह तो उनके लिए बहुत उल्लास से गोचरी लाते हैं खास आकर ''लाभ दीजिए'' ऐसी छंदना समाचारी भी पालते हैं परंतु वह बिनती करनेवाले महात्मा को खाली भक्ति के भाव से जो निर्जरा होती है उसी से संतोष मानना पडता है।

यह महात्मा को वपरा ने तक आगे बढ नहीं सकते निराश ही होना पडता है ? जो कि फिर उनकी त्याग भावना.. उसकी टेक.. वगैरह देखकर अहोभाव हो जाता है।

✻ ✻ ✻ ✻ ✻

(7) किसी जगह जिमणवार जैसा रखा हुआ हो तो वहाँ से दाल भी मिल सके वैसा हो.. और उसमें भी हल्दी हो। और सभी तरह से एकदम निर्दोष.. काफी प्रमाण में.. बहुत दिनों के बाद जहाँ पर कल्पना भी नहीं कर सकते वहाँ पर ऐसे ही छोटे-इतरों के ही घरवाले गाँव में ऐसी दाल मिलती हो, और सामने वहोरानेवाले गृहस्थ के भाव भी बहुत अच्छे दिखे.. जैन साधु म.सा. को बहुत वर्षो से देखकर बहुत अहोभाव और श्रद्धाभाव से वहोराने के लिए तैयार हो।

और उसमें भी गाँव में (पूरे समाज का भोजन यहीं पर है) ऐसा पता चलते दूसरा रोटी-रोटले का ठिकाना पडेगा कि नहीं ? उसमें आशंका खडी होती है। (भोजन में तो पूरी ही होती है इसलिए) तो भी इन सभी के बीच एक हल्दी के कारण यह मुनिवर दाल नहीं वहोरते.. तो नहीं ही वहोरते हैं .. सिर्फ चावल मिले तो वही वापर लेते हैं। उसमें भी घी-तेल या दूसरा कुछ डाला हुआ हो तो फिर दुकानों में तलाश करके चने मिलते हों तो सिर्फ चने से आंबिल कर लेते और अगर वह भी न मिले दूसरा कुछ भी सेट करके एक दिन निकाल देते हैं.. परंतु आंबिल में हल्दी तो नहीं ही !

✻ ✻ ✻ ✻ ✻

(8) उनके आने के बाद अंतिम तीन-चार साल के दरम्यान हमारा एक चातुर्मास तपोवन में हुआ और उसके उपरांत शेषकाल में आना-जाना, स्थिरता वह सभी मिलाकर थोडा-थोडा करके दूसरे चार महीने रहने का हुआ..

तपोवन में रोज तीनों टाईम पाँचसो - छे : सौ लोगों की रसोई बनती थी उसी रीत से तो पूरी निर्दोष गोचरी।

परंतु हेम वि. तो अक्सर अधिकतर आंबिल ही।

तपोवन की रोटी में मोन नहीं होता वह बात सच्ची परंतु 'म.सा. के लिए रोटी बनाकर लुक्खी (बिना घीवाली) रखनी है' उस लक्ष से अगर लुक्खी रोटी गैस पर से उतारे तो आधाकर्मी और वह बनाकर रखे तो उसमें स्थापना दोष भी लगता है । हेम वि. को तो एक भी दोष नहीं चलता ।

इसलिए दोपहर में जब छ : सौ लोगों के लिए फटाफट रोटी उतरती है और घी लगाते हैं तब गोचरी वहोरने जाते हैं। अब उस समय हेम वि. तुरंत वहाँ रोटी के चूल्हे के पास पहुँचते पहले ही जितनी रोटी उतरती हो और घी लगाना बाकी हो उन रोटीयों में खुद के आने के बाद की उतरती हुई रोटी उसके ऊपर न गिरे वह रीति से एक बाजु कराकर तुरंत वहोर लेते थे ।

इसलिए बीच में से ग्रहण की हुई रोटी में ज्यादा से ज्यादा दो-चार-छः रोटी मिलती थी और कभी-कभी नहीं भी मिलती थी और कभी कभी काफी प्रमाण में भी मिल जाती थी..

* * * * *

(9) दूसरी बात..

छः सौ लोगों के लिए रोटी बन रही हो, इसलिए बडे चूल्हे पर एक साथ बारह-पंद्रह रोटी एक के बाद एक बन रही हो । उसमें कभी-कभी अमुक रोटीयाँ जल भी जाएँ या खाखरे के जैसी बन जाय । उस समय रसोईया सभी रोटी को परात में उतारने के बदले 'यह अच्छी नहीं है वह रीति से गैस के पीछे डाल देते थे कितनी तो इधर - उधर घुमाने से आधी कच्ची ही चूल्हे के नीचे गिर जाती थी ।'

ऐसी सब रीजेक्टेड रोटी वहाँ बहुत बार अलग-अलग गिरी हुई होती थी, जो उन लोगों के लिए वेस्ट-माल के जैसा था ।

परंतु यह मुनि के लिए जली हुयी/खाखरे जैसी/चव्वड/अर्थपक्व रोटियाँ खूब उपयोगी.. क्योंकि 'संपूर्ण निर्दोष'

इसलिए बहुत बार उन्होंने रोज ही ऐसी रोटियाँ वहोरी है इनसे ही इनके आंबिल हुए हैं । वहाँ के वहोराने वाले भाई भी सामने से ही पूछ लेते थे..

''साहेब ! रीजेक्टेड लाऊँ ?'' ऐसे में कभी दो-चार और कभी-कभी 8-10 नंग भी हो तो लेकर आते थे । इनको जितना खप होता था उतना लेते थे ।

बहुत बार मेरे पास भी ऐसी रोटियाँ मँगवायी है और मैंने भी वहोरकर उनकी

भक्ति की है ।

(10) तपोवन में उबाली हुई दाल तो मिलती थी, परंतु सुबह दाल को उबालने के बाद आंबिल के लिए अनिश्चित प्रमाण में दाल को अलग रखके दूसरी दाल को तडका देने में आता है इसलिए आंबिल की दाल स्थापना दोषवाली बनती है.. वह तो लेनी नहीं है । तो फिर, या तो सुबह में जब दाल को पकाते हैं तब ही वहोर लेनी चाहिए ।

उसमें भी उनका ऐसा है कि दाल वहोरने स्पेश्यल नहीं जाते.. नवकारशी की गोचरी जो भी महात्मा वहोरने जानेवाले हों उनके पास मँगवाते थे उनके टाईम में कुछ गडबड हो तो बात पूरी.. । फिर दाल में तडका हो गया हो या पकी ही न हो.. इसलिए वह दाल उनके लिए केन्सल ।

या तो फिर शाम की रसोई में दाल हो और वह कभी दोपहर में ही पका दी हो.. तो उसमें से लेने से उन्हें दाल का जोग होता था ।

ऐसा होने से रोज दोपहर में दाल मिल जाएँ ऐसा निश्चित नहीं था । कभी कभी वहाँ पर कढी भी बनती थी और दूसरी दाल हो तो भी एक-डेढ या दो बजे तक के आस-पास भी तैयार होती थी, तो फिर वे इतना लेट भी वहोरकर आते थे ।

परंतु, यह दोनों विकल्प अनिश्चित.. समय का बराबर ध्यान न रहे तो दाल जाए ।

... इसलिए इनके ढेर सारे आंबिल तो दाल बिना के ही होते थे ।

और, यह तो तपोवन की बात हुई.. बाकी तो हम शहरों-गाँव में ही रहने का हुआ है..

और, तपोवन से बाहर इतनी सब दाल के लिए सुविधा भी नहीं होती इसलिए वहाँ दाल मिलना बहुत मुश्किल ही था.. कभी-कभी घरों में से चावल का पानी मिल जाए तो ठीक.. नहीं तो सब.. सुखा-सुखा ठुस-ठूसकर (दबा-दबाकर) वापर लेते थे ।

* * * * *

(11) गोचरी वापरते वक्त बीच-बीच में जो पाणी पूरे प्रमाण में वापरते हैं तो बाद में पीछे से कम लेना पडता है । उनके लिए (ओसामण) चावल का पानी, कुकर का पानी, कठोळ का पानी ऐसा जो भी प्रकार का मिले तब ज्यादा-ज्यादा वापर लेते हैं । अंत में पातरे धोने में 1-2 बार ऐसा ही कुछ ले लेते हैं । इसलिए डायरेक्ट खुराक के साथ दोषित पानी की पूत टल जाती है ।

और सादा-निर्दोष पानी कम मिला हो अथवा न भी मिला हो तो यह रीति से

दूसरा पानी ज्यादा लेते हैं कि बाद में तृषा कम लगे और शाम तक दोषित पानी की जरूरत ही न पडे ।

* * * * *

(12) यह तो हुई एक्स्ट्रा पानी की बात, परंतु, एकदम दाल जैसा आंबिल में कुछ भी मिला न हो ऐसा बहुत बार होता है, तब जल्दी उतर जाएँ तो वापरने में समय कम बिगडे और स्वाध्याय का समय ज्यादा मिले इसलिए थोडी देर दबा-दबाकर और बाद में पानी डालकर सब इकट्ठा करके वापरते हैं सब यानि रोटी, चावल, खाखरा, मेथी का आटा, ऐसा-ऐसा जो भी मिला हो, कभी-कभी कच्चे पापड, कच्चे पौहे भी मिले हो । उन सभी का एक द्रव्य करके भूख को शांत कर देते हैं । (खाडो पूरी देवानो) परंतु उसमें इतनी शर्त पक्की थी कि कुछ भी करके दोष बिना का पानी मिला हो तो वहीं गोचरी में इकट्ठा करते हैं नहीं तो पूत हो जाती है ।

- वह तो नहीं चलायेंगे ना ।

.. इस बात का मुझे भी तीन साल के बाद..

गए कातक महीने में ही पता चला ।

वह भी कैसे ? जानने को मिली एक रोमांचक घटना से

यह है घटना..

भीनमाल से अहमदाबाद के तरफ हमारा गत वर्ष कातक वद एकम को विहार शुरू हुआ । हमारी धारणा थीं कि रोज के 20 कि.मी. ऊपर की एवरेज रखकर दश-बारह दिन में हाईवे या विहार के कायमी रास्ता को छोडकर शोर्ट में शोर्ट.. अंदर का रास्ता लेकर अहमदाबाद पहुँचेंगे ।

मैं और हेम वि. दोनों ने बाकी के तीन से अलग होकर तेजी से में विहार करना शुरू किया । परंतु दो ही दिन में हेम. विजय के पैर के तलीये की चमडी छील गयी । पत्थर की मार से अंदर भी तीव्रतम पीडा शुरू हुई ।

मैंने कहा 'मौजे पहनना हैं ।' तो चमडी छीलेगी नहीं ।

''उसके लिए तो मैंने नीचे लगाने की सफेद पट्टी ली है । परंतु मुख्य तो अंदर मांस के भाग में बहुत पीडा हो रही है ।''

''तो फिर सोलवाले मोजे पहनो ।''

''नहीं वह तो नहीं पहनने । आप चिंता मत करो.. विहार नहीं अटकेगा । खाली थोडा धीमा होगा (यानि कि पंद्रह कि.मी. के चौदह नहीं होंगे, परंतु पंद्रह कि.मी.

चलते तीन घंटों के बदले चार-पाँच घंटे होंगे ऐसा बन सकता है ।)''

मैंने जिद्द नहीं की ।

उनकी रफ्तार बहुत घट गयी । घंटे में साढे पाँच-पाँच कि.मी. चलनेवाले वह सिर्फ 3 - 4 कि.मी. पर आ गए । परंतु मुख पर एक भी फरियाद की रेखा नहीं थी । मैं विहार रद्द करने को बोलूँ, तो घीसकर ना बोलते थे, ज्यादा करने को बोलते थे । रास्ते के गाँवों में सभी जगह पर जैनेतरों की बस्ती पर आधार रखना था जैनों के घर भी थोडे होते थे वह एकल - दोकलवाले ही थे इसलिए...... ज्यादा तो जैनेतरों का ही लक्ष्य रखना पडता था । परंतु वहाँ पर गोचरी जाना मुझे कम जमता था और ऐसे भी उनकी आंबिल की गोचरी लानी मुझे कठिन लगती थी ।

कार्तिक वद चौथ का वह दिन..

हमने जाना था कि 14-15 कि.मी. चलेंगे तो मोरीया नाम का गाँव आयेगा मुझे याद आया कि यह तो हमारे मुनि जयभूषण वि. के संसारी सगे मामा का गाँव। वहाँ पर तो उपाश्रय देरासर वगैरह सभी की सुविधा है । घर तो लगभग नहीं होंगे। परंतु ऐसे स्थानों में सभी अनुकूलता रहती है । बाहर गाँव से यहाँ गाँव के जैन कोई कारण से आये हो, तो गोचरी की भी अनुकूलता होती है । मेरे लिए तो वही जरूरी था ।

और कातक वद 5-6-7 तीन दिन हेम वि. अट्ठम करनेवाले थे । 75 मी ओली चल रही थी, अंतिम चार दिन में 80 के ऊपर कि.मी. का विहार हो चुका था, इसलिए शरीर को तो थकावट पहुँची थी फिर भी थकान को भूलकर अट्ठम करने का उनका निर्णय पक्का था ।

मैंने ना बोला फिर भी उनकी एक ही बात - 'मुझे दीक्षा देनेवाले, मेरे अत्यंत उपकारी साध्वीजी भ. कातक वद 7 को (महेसाणा के पास अकस्मात में) अवसान हुआ उस निमित्त से हर साल (कातक वद 5-6-7) का मैं अट्ठम करता ही हूँ और उनकी कृपा से ही कोई भी मुश्किल नहीं आती । आप बिल्कुल चिंता मत करना, मुझे तो यह अट्ठम अच्छा ही होता है ।'

और उनका आज अट्ठम का उत्तरपारणा था । मैंने उन्हें हाँ नहीं बोला था परंतु मुझे आज्ञा देने की इच्छा तो थी । इसलिए भी मुझे मन हुआ कि रास्ते में अज्ञात गाँवों में ठहरने के अलावा मोरीया गाँव में पहुँचे तो अच्छा ।

सुबह में छः बजे के बाद विहार शुरू किया । हेम वि. की रफ्तार घटने लगी आगे व्यवस्थादि करने और मंदगति से चलने की मेरी शक्ति नहीं होने से मैं आगे चला

। बीच में एक गांव में देरासर आया, वहाँ पर दर्शन आदि करके आगे बढा ।

जितना समझा था मोरीया गाँव उससे दूर निकला । मैं लगभग 10 बजे पहुँचा यानि कि 18-19 कि.मी. के आस-पास तक हुआ । मुझे चिंता थी पीछे आते हेम.वि. की !

''जैन देरासर कहाँ पर आया है ?.........'' गाँव में प्रवेश करते मैंने प्रश्न किया ।

''यहाँ पर कोई भी जैन मंदिर नहीं है ।''

''मंदिर तो है भाई ! शिखरबंधी है । मैं पंद्रह साल पहले यहाँ पर आया हुआ हूँ । आप क्यों ना बोल रहे हो ?''

मुझे लगा कि - वह भाई नये होंगे, परंतु दूसरे 2 - 3 भाईयों को पूछा तो जवाब एक ही.. 'यहाँ पर जैन मंदिर, जैन उपाश्रय, जैनों के घर कुछ भी नहीं है । बहुत साल पहले एक जैन का घर था, वह भी अब तो अमेरिका..'

उसमें से एक ने घटस्फोट किया - 'महाराज साहेब ।' मोरीया गाँव दो है । एक यह दांतीवाडा तालुका का । दूसरा है वडगाँव तालुका का । आप शायद वडगाँववाले 'मोरीया गाँव' में गए होंगे । वहाँ पर देरासर वगैरह सब है ।

मैं तो एक क्षण घबरा गया । 'तो अब करना क्या ? रहेंगे कहाँ ? पानी का क्या ? गोचरी का क्या ? कल से हेम वि. को अट्ठम करना है ! उसका क्या ? और हेम वि. तो आए भी नहीं थे । पूरे गाँव में मैं कहाँ पर ठहरूँ, उसका उन्हें कैसे पता चलेगा ? हम दोनों एकत्र कैसे होंगे ? उसका विचार करके.. मैं तुरंत शंकर के मंदिर में ही ठहरा । पानी को किस तरह गरम करवाया है वह तो मेरा मन ही जानता है ।

बराबर सवा ग्यारह बजे हेम वि.शंकर के मंदिर के वहाँ पहुँचे । मुझसे अलग होकर लगभग चार घंटे के बाद बाकी के 14-15 कि.मी. पूरे किये । उसमें भी अंतिम 7-8 कि.मी. तो मुश्किल से 3 की एवरेज से वह चले थे । उनके पैर में कितनी पीडा हुई होंगी ? वह तो कल्पना से बाहर ही था ।

तो भी, 'दुख आए तो उनके मुख की रेखा बदले - वैसा तो आज तक मैंने देखा भी नहीं था ।'

अजैनों के पास से काम निकालना उन्हें अच्छा आता था । इसलिए उनके आने के बाद वह तुरंत काम पर लग गए । मंदिर के तरफ एक छोटा कमरा था वह खुलवाया । और वहाँ पर हम ठहरे । अजैन होने से गोचरी जाने में मुझे संकोच हो रहा था, और

दूसरी तरफ हेम वि. को गोचरी भेजने का मन नहीं हो रहा था । परंतु वह तो तुरंत तैयार होकर पौने बारह बजे सहेज लंगडाते पैरों से गोचरी गए ।

उनको जाते देखकर मुझे दु:ख और सुख दोनों की प्रतीति हो रही थी । फर्ज मेरा था कि 'मुझे कोई तकलीफ नहीं है, तो गोचरी मुझे जाना चाहिए ।' तो भी वह जा रहे थे.. उसका दु:ख । परंतु, उनके मुख पर फरियाद (शिकायत) की एक भी रेखा नहीं थी । उलटा उछलता भक्तिभाव । उसका सुख ।

तो भी अज्ञात गाँव में भी दो घरों से सिरा मिल गया, मेरा एकासना तो अच्छा हुआ परंतु उनके आंबिल का क्या । वह मुनिवर स्थापना दोष भी नहीं सेवते हैं, तो दूसरे दोष की तो क्या बात ।

जाडी दश रोटियाँ, एक-दो रोटले, थोडी अखंड सूंठ, थोडी अखंड मरी बस यह उनकी वह दिन की गोचरी थी । मैं तो फटाफट वापरने बैठ गया परंतु वह तो अब भी मस्ती से दूसरे काम कर रहे थे..

उनको बहुत पसीना होता है.. बाहर निकलते हैं तब तुरंत उनके कपडे भीगने लगते हैं । इसलिए कपडे आकर सुखाने पडते हैं । पह्ले थे उसे भी अलग-अलग कर देते थे । यह सभी के लिए उन्होंने जगह ढूँढी और.. व्यवस्थित पूजकर खिडकी-दरवाजे पर सुखाने लगे ।

यह इनका रोज का क्रम था !

ऐसी हालत में भी उनको कभी भी वापरने की अधिरायी (जल्दी) नहीं थी ।

उल्टा मुझे बहुत वार चिढकर कहना पडता था कि,

''कितनी देर भाई । मेरा आधा एकासणा होने को आया है और आप अब भी ऐसे इधर-उधर आंटे ही लगा रहे हो ।''

परंतु उन्हें फिर से सुखाये हुए कपडे उड न जाए, वह सभी की सेटींग करनी थी ।

सूख जाने के बाद तुरंत उसे उतार सके... ऐसी व्यवस्था करते थे ।...

...इन सभी में बहुत समय निकल जाता था..

...और उसमें भी फिर से गाथा गोखने बैठे......! उनको नियम था - रोज वापरने बैठे उससे पहले फीक्स एक गाथा तो गोखनी ही ! फिर ही मुँह में पानी डालना । ऐसे तो पहले भी हो जाता था । परंतु आज तो सुबह से टाईम ही नहीं मिला । रास्ते में तो गोखते नहीं हैं । ईर्या समिति में कभी समझौता नहीं हो सकता । इसलिए अभी ही इसका अवसर आया था और चाहे कितनी ही जल्दबाजी हो या देर हो तो भी कभी भी

उन्होंने अपने नियम में छूट नहीं ली हैं ।

ऐसा करके लगभग, एक-डेढ बजे वह वापरने बैठे होंगे,

परंतु,

अब तक वापरना चालू नहीं किया था......... कुछ विचार में हो वैसा मुझे लगा ।

''क्या कुछ बाकी है । आपकी गोचरी तो आ गयी है ना ।'' ''.. और थोडा कुछ बाकी हो तो भी.. आप वापरना चालू करो.. मैं बाद में जाकर लेकर आऊँगा ।''

.. पौने भाग का मेरा एकासणा हो चुका था.. मैंने उन्हें जल्दी करके के लिए सूचना की तो भी..

उनके मुख पर कुछ दुविधा दिख रही थी..

''क्या है । कुछ बाकी हो तो लेकर आओ ।''

- मुझे पता था कि पीछे से मुझे भेजना पडे.. गोचरी के लिए मुझे जाना पडे - वह उन्हें इष्ट नहीं था.. इसलिए, 'खुद को ही जाना होगा.. पर, मुझे कहने-पूछने में घबराते होंगे...' ऐसा सोचकर मैंने सामने से ही अनुज्ञा दे दी..

''नहीं बाकी तो कुछ नहीं है, पूरे प्रमाण में आ ही गया है, कम नहीं ।''

''तो क्या सोच रहे हो । जल्दी वापरने का चालू करो.. ।''

''कर ही रहा हूँ.. पर जो अट्ठम करना हो तो.. दुकान में से थोडे चने ठीक ! अब मुझे समझ में आया.. उनको कम ही था..''

पर, रोज वापरने का ही होता है.. इसलिए चिंता नहीं थी ।

.. ऐसा रोज होने से वह वहोरने जाने में मन से तैयार नहीं हो रहे थे । आज आंबिल हो और आगे-पीछे भी उपवास या आंबिल ही हो वह तो उनके लिए नोर्मल था यानि की आंबिल के बीच एक भी उपवास आएँ तब तक उन्हें रोज जैसे वापरना वही उनकी गिनती है । एक से ज्यादा में कुछ विशेष हो ऐसी उनकी गिनती थी ।)

इसलिए आज उन्हें ऐसा था कि जो अगर कल वापरना ही हो तो उन्हें खुद के लिए दूसरी बार गोचरी जाना नहीं था..

एक बार में जितना आएँ उससे ही चलाना था ।

परंतु, उनके मन में अट्ठम की उत्कंठा तीव्र थी.. और, मैंने तो महीने पहले से ही साफ ना बोल दिया था । इसलिए वह दुविधा में थे कि 'जो अट्ठम करने अगर न मिले तो फिर से मुझे गोचरी नहीं जाना..' 'पर, अट्ठम करना हो तो थोडा टेका रहे.. लंबे

विहार खींचने में भी मेरे निमित्त से गुरूजी को अंतराय न हो.. विहार करने में गुरूजी को सोचना पडे.. ऐसा नहीं होना चाहिए - बस यही उनकी भावना थी..'

.. इसलिए दूसरी बार गोचरी लाने से पहले पुष्टालंबन का विश्वास करने के लिए ऊपर के अनुसार रहस्योद्घाटन किया !!!

मेरे मन में अट्ठम करवाना फीक्स ही था.. तो भी अभी से हाँ नहीं कहना है ।

'.. ऐसी लथडती हुई हालत में कुछ प्रोब्लेम हो जाए तो ?'

इसलिए,

'कल सुबह में बात ।'.. ऐसा सोचकर

''आप अट्ठम की बात भूल जाओ । उसकी बात मत करो ।''

आपको कितने चने चलेगे, बोलो ! इतना लंबा विहार हो गया है.. और फिर उसमें भी ऐसी हालत हुई है.. थोडे चने होंगे तो ठीक रहेगा.. अकेले रोटी-रोटले से नहीं चलेगा..

''नहीं गुरूजी । ऐसा कुछ जरूरी नहीं है सच में... यह तो खाली..''

''मुझे कुछ सुनना नहीं है । कहाँ पर है दुकान ।''

''यहाँ पर ही.. है तो सामने ही.. सभी जगह पर साथ में आए थे वे पुजारी भाई बाहर खडे भी हैं.. उन्होंने मुझे रीटर्न में आते तब कहा था कि ''जाकर आते हैं ।''

परंतु मुझे था कि - एक बार आपका वापरने का चालू हो जाएँ.. इसलिए लेने नहीं गया.. । पर अब मुझे खास..''

''आपको कहा ना !'' मेरी आवाज और आवेश दोनों बढे..

'' जी!'' करके तुरंत खडे होकर निकल गए..

एक बडा चेतना भरकर चने लेकर आएँ..

'इतनी उणोदरी रखकर भी..... रोज के आंबिल ही हैं तो दूसरी बार नहीं जाना । वह भी फिर से ऐसी हालत में ।'

मैं तो सोचता ही रह गया..

जो कि, ऐसा चलाना वह तो उनके लिए बहुत बार हो गया था । मुझे भी वह ख्याल में ही था.. परंतु आज की परिस्थिति तो कुछ अलग ही थी उसमें भी इतने सत्व को जागृत रखना.. आहार संज्ञा पर नियंत्रण रखना.. वह ऐसा कोई विरल वीरपुरुष ही कर सकता है ।

और आंबिल करना चालू किया.. पर मुझे यह देखना मुश्किल सा लग रहा था

सिर्फ रोटी कैसे चबायेंगे, वह गले में से उतरे भी कैसे । दाल वगैरह का तो प्रश्न ही नहीं था..

''पानी के साथ लो ना ।'' मैंने कहा ।

''नहीं । पानी आधाकर्मी है ना । जो रोटी पानी के साथ वापरूं तो रोटी पूरी दोषवाली बन जाती है । पानी तो अपवाद के रूप से दोषित लेना पडता है । परंतु रोटी वगैरह तो पूरी निर्दोष ही है, उसे अकेले वापरूं तो मुझे खाली आधाकर्मी पानी वापरने का ही दोष लगता है, पूरी गोचरी का नहीं ।''

'ओ बाप रे ।' अब मुझे समझ में आया कि - 'वह कभी भी आधाकर्मी या मिश्रदोषवाले पानी को किसी भी चीज (वस्तु) के साथ मिश्रित (मीक्स) नहीं करते, उसका कारण पूत दोष है ।'

हम सभी तपस्या के पारणे में सूंठ-गुड का उकाला लेते हैं । हम उकाला स्पेश्यल नहीं करवाते, वह अपनी जयणा । पर आधाकर्मी गरम पानी में घी-गूड-सूंठ इकट्ठा करके उकाला वापरते हैं, यानि कि वह उकाला पूतिदोष-वाला बनता है । आधाकर्मी पानी वह इस काल में अपवाद गिना जाता है । परंतु पूति-उकाला वह कोई इसके जैसा अपवाद किस तरह से गिने ?

हम ऐसा सोचते हैं कि 'पानी तो ऐसे भी आधाकर्मी ही लेना है तो ?' पर पानी पानी तरीके से आधाकर्मी लेना वह अपवाद !पानी उकाले के उपयोग में लेना वह तो एक्स्ट्रा दोष ही होता है ना ?

हेम वि. पानी के उपयोग बिना सभी रोटी वापर गए ।

(हाँ ! मुख (मुँह) खाली हो, तब पानी वापरते हैं । परंतु मुंह में रही वस्तु को पेट में उतारने के लिए पानी नहीं वापरते हैं ।)

(आज यह लिखने के पहले गोचरी मांडली में हेम वि. को पूछ लिया । उन्होंने कहा कि 'दोषित पानी और रोटी / चावल / रोटी / पौआ वगैरह.. पात्र में या मुँह में इकट्ठा नहीं करते । थोडी-थोडी चीजें गले से उतार देने के बाद थोडा पानी ले लेता हूँ वह भी इसलिए कि अगर अकेली 8 - 10 रोटी एक साथ में वापर लूँ कि अकेले चावल वापर लूँ तो पानी / प्रवाही के बिना वह सरल रीति से पचती नहीं है । इस दुष्पाच्यता को टालने के लिए बीच में पानी को वापरना पडता है ।'

ऐसे तो वह कभी भी पानी में भी स्थापना दोष चलाते नहीं हैं परंतु उनके गुरूदेवश्री ने उनको आदेश किया था कि आपको पानी के लिए स्पेश्यल चर्या नहीं

करनी है क्योंकि उनके क्षयोपशम की विशिष्टता का लाभ स्व.पर दोनों को मिले और स्वाध्याय में उसके लिए ज्यादा समय दे सके, उसके लिए ।

जो कि उनका कहना ऐसा था कि 'पूज्यपाद गुरूदेवश्री की भावना के अनुसार से मैं अप्रमत्त रहता नहीं हूं । इसलिए मुझे दोषित पानी वापरने का दोष लगता ही है ! और उसमें भी फिर इस तरह शक्य यतना करके संतोष मानना वह कोई प्रशंसा करने योग्य नहीं है ।'

ठीक है इनको जो भी मानना हो वो हम तो इसमें से मात्र पदार्थ तो समझ ले ना !

अंत में चने वापरे ।

बस, ऐसे पाँच द्रव्यों से उनका उत्तरपारणा पूरा हुआ.. खुद अब भी यह वापरते-वापरते कुछ उदास थे.. उनकी साहजिक प्रसन्नता चली गयी थी..

कारण,

'अट्ठम करने मिलेगा या नहीं.. और दूसरी बार गोचरी लानी पडी वह उनको सहन नहीं हो रहा था ।'

फिर भी... मैं देख ही रहा था ।

'कल बात.. मुझे अंतराय को करना ही नहीं था ।

फिर से याद करो ।

- 75 उपरकी ओली
- पाँच दिन में 100 कि.मी. उपर का विहार ।
- पैरों की चमड छिल गयी, मांसल भाग पर भयानक पीडा ।
- कल से अट्ठम चालू करना ।
-उस अट्ठम में भी रोज 20 के आसपास कि.मी. का विहार करना होगा, सामान्य से सभी के होते हैं तो भी उससे ज्यादा वजनदार झोली-तरपनी-पोथी-घडा सब उठाना भाई तो साथ में था ही नहीं, इसलिए इसे या गृहस्थों को देने का विकल्प तो खडा ही नहीं था ।
- वह अट्ठम का उत्तरपारणा यानि बिना घी वाली सुखी रोटी + रोटले + शेके हुए चने + सूंठ के गांगडे + मरीके दाणे ।

है ना कमाल ?!?!?!?

मोरीया से पालनपुर 10 कि.मी. ही था ।

उसी दिन शाम को वहाँ पर पहुँच जाएँ तो दूसरे दिन आगे वडगाँव मात्र 12

कि.मी. में आएगा । ऐसा प्रोग्राम उन्होंने मन में बनाकर रखा ।
उसी हिसाब से हम उजाले में ही पहुँच जाएँ उस गिनती से निकले..

परंतु आश्चर्य !

आज तो शुरूआत से ही उनकी स्पीड घट गयी थी ।

इतने दिनों में शुरूआत के 8-10 कि.मी. तो मेरे साथ में बराबर सवा पाँच साढे पाँच की रफ्तार से चलते ही थे फिर थोडी घटती है और मेरी धीरज नहीं रहने से उनको छोडकर अकेला पहुँच जाता था ।

परंतु आज तो शुरूआत से ही 2।।-3 कि.मी. की रफ्तार से चले होंगे और ऐसी हालत में तो अकेला जाना-पीछे रखने का विचार भी न आए ।

अतिशय पीडा हो रही थी वह हकीकत उनके मुँह पर से नहीं, परंतु पैरों के झटकों पर से स्पष्ट हो रही थी.. उपाधिऔर घडा सब भारी..

मुझसे देखा नहीं गया........ उनको मनाकर झोली और घडे को मैंन छीन लिया ।

फिर भी स्पीड तो ऐसी की ऐसी ! खास कोई फर्क नहीं..

मौजे पहनने को कहा.. परंतु स्पष्ट 'ना'

रास्ते में एक जगह रू मिल गया । वह बाँधने को कहा तो उसमें इच्छा के बिना तैयार हुए-मेरा भी सद्भाग्य ! परंतु थोडा आगे जाकर ऐसे करते-करते नहीं बाँधा तो नहीं ही बाँधा... जिद्दी तो थे ही !

यह बाबा गाडी हमारी.. सूर्यास्त के समय पालनपुर से अब 6-7 कि.मी. दूर थी ।

1।। घंटे में खाली 3-4 कि.मी. चल सके ।

उनके मन की धीरता भले सर्वोत्तम (बेनमून) हो तो भी..

घायल पैर की हालत देखकर....

लगा कि.. मुझे आगे वडगाँव-वडगाँव तो दूर

परंतु आज पालनपुर पहुँचने में भी मजा नहीं है !

इसलिए, जो भी पहला स्थान-किसी स्कूल-किसी का घर, किसी की फेक्टरी में रूम-कोई पेट्रोल पंप की केबीन-जो कुछ भी मिलेगा उसमें अभी के अभी रह जायेंगे ।

फिर कल देखा जायेगा ।

2-3 बार टाला इसलिए मुझे ख्याल आ गया कि उनकी तैयारी जरा भी नहीं की

थी !

मुझे फिर सीधे कोई अंजाण (अज्ञात) विस्तार में घुसने का जमता नहीं था।

इसलिए चलते ही रहे। थोडे ही दूर हाईवे का आवाज सुनने में आया वहाँ पर कुछ ठिकाना लगायेंगे।

ऐसे करते.. अंधेरा हो गया फिर भी.. लगभग पौने घंटे के बाद हाईवे पर पहुँचे।

वहाँ पर ही सामने स्वामीनारायण गुरूकुल था उसमें ठहरे.. प्रतिक्रमण करने के समय में 'अब करूँगा तो निंद में ही होगा' ऐसी मुझे बात की।

मैंने कहा कि - "थोडी देर आराम करने के बाद ही करना।" थोडी देर में जागकर (उठकर) प्रतिक्रमण शुरू किया। वह भी संपूर्ण खडे खडे ही।

दूसरे दिन सुबह मेरी सख्ती को देखकर पैर में रू भराकर ऊपर दो कपडे बाँधकर निकले..

मुश्किल से 2।। - 3 घंटे में बडे देरासर दर्शन करके संस्कार सोसायटी पहुँचे।

मन से दृढ संकल्प किया था, तो भी मुझसे घबराते-घबराते अट्ठम का पचक्खाण मांगा...

"होगा ?"

"साहेब ! सचमुच मुझे यह अट्ठम में कोई मुश्किल नहीं होती। शायद आज शाम को ठहरना (रहना) पडेगा बाकी कल सुबह विहार में कोई भी मुश्किल नहीं आएगी।" उनके गुरूबहुमानजन्य श्रद्धांतिशय से निकलते शब्दों के सामने मुझे कोई विचार करने का अवसर ही नहीं था।

और ऐसे भी मैंने तो निश्चय कर लिया था कि 'भले अहमदाबाद दो दिन लेट पहुँचे.. परंतु पैर को राहत मिले तब तक आगे जाना ही नहीं है बीच में फिर से अटकेंगे तो ठिकाना नहीं रहेगा ?'

उन्होंने अट्ठम का पचक्खाण लिया तब से उनकी रौनक ही बदल गई.. पैर की तो नहीं परंतु मुख की।

इसके बाद के दिन को शाम को विहार के लिए वह तो सामने से तैयार हो गए थे.. !!

उनको दूसरा उपवास.. परंतु पैरों में थोडा अच्छा होने लगा, इसलिए हमने विहार किया...

तीसरे दिन भी सुबह-शाम में होकर 25 कि.मी. जितना विहार..

उसी दिन हम पीछे रहे हुए बाकी के तीन महात्माओं के साथ एकत्र हो गए..

चौथे दिन सुबह भी विहार.. 12-14 कि.मी. का ।

दोपहर दूसरे महात्मा (शीलगुण विजयजी) गोचरी गए । परंतु वहाँ पर भी खाली रोटी, चावल, सूंठ.. इसके बिना कुछ भी नहीं मिला । अलबत्ता वह उमता गाँव में उपाश्रय वगैरह सब होने से 'व्यवस्था' तो होनी ही थी, परंतु उनका मन माने तो ना ?

ऐसे भी, अट्ठम का पारणा अष्टमी (आठम) के दिन हुआ, परंतु दाल का एक बुंद भी नहीं..

शाम को 10-12 कि.मी. विहार..

कातक वद 9 को फिर से सुबह में विहार..

स्थान पर पहुँचने के बाद मेरे पास 'उपवास' का पचक्खाण मांगा ।

मुझे चक्कर आने लगे, यह साधु का शरीर पत्थर है कि क्या ?

आज किस लिए उपवास ? मैंने थोडे गुस्से में पूछा ।

''मेरा आज दीक्षा दिन है...'' नम्रता से जवाब मिला ।

मुझे गुस्सा आया - 'आज ही क्यों दीक्षा ली ?' परंतु सालों पहले थोडी ना पता था कि यहीं दिन ऐसी परिस्थिति खडी होगी ।

उनके मुख पर तो जाने स्थितप्रज्ञता का भाव !

दीक्षा के दिन उपवास करना ही पडे ऐसा एकांत नहीं है । परंतु उनकी भावना को देखकर मुझे अनुज्ञा देनी पडी । और ना बोलूं भी किस तरह ? क्योंकि, अट्ठम के दरम्यान, चाहे जितने विहार हो तो भी उनकी कोई भी क्रिया वगैरह में मैंने प्रमाद देखा नहीं था । प्रतिक्रमण खडे-खडे, खमासणा 17 संडासापूर्वक का, पडिलेहन (प्रतिलेखन) भी स्वयं, विहार में सभी उपाधिस्वयं ही उठाते थे और साथ में मांडली की विद्यागुरूजी की भक्ति थी ही.. इसलिए अनुज्ञा दी ।

और शाम को 10 कि.मी. का विहार

फिर आगे दूसरे 20 कि.मी. जाकर दसम के दिन जब गाँधीनगर के पहले कोई हनुमान के मंदिर में पहुँचे तब उनको पारणे में (दोपहर में आंबिल वहीं पारणा, उस पारणे में..) निर्दोष दाल मिली.. मानो कि 'हमें कोई तपस्वी को दूधपाक से पारणा कराने का मिले उतना मुझे आनंद हुआ ।'

वह दिन भी वहाँ तो धीरे-धीरे चलते दस-साढे दस बजे आ सके । पैर का ठिकाना तो पडा ही नहीं.. तो भी,

दोपहर में.. गोचरी का लाभ मुझे दीजिए - ऐसी विनती की ।

''कुछ दिमाग है कि नहीं, चुपचाप बैठ जाओ । यह (शीलगुण विजयजी) जाकर आएँगे ।'' - मैंने तो सीधा कह दिया ।

परंतु,

''गुरूजी ! आज महावीर प्रभु का दीक्षा कल्याणक है । कल मेरे दीक्षा दिन का उपवास किया तो आज पूरे दिन की भक्ति का लाभ देकर कल्याणक का उत्सव मनाना है ।''

उनके भाव को देखकर अनुज्ञा दिये बिना दूसरा कोई रास्ता ही नहीं था ।

वह हमारी दोनों की और उनकी स्वयं की सभी (सब) गोचरी लाने के लिए तैयार हो गए । वहाँ से दूर 1-1.30 कि.मी. दूर अग्रवालों के घर थे.. ऐसा जाना था ।

''उस जगह जाकर आऊं तो आपकी गोचरी व्यवस्थित मिल जाए ।'' उन्होंने शुद्ध भक्तिभाव दर्शाया ।

नहीं । बिल्कुल नहीं । यहाँ नजदीक में ही तलाश करो कुछ न कुछ ठिकाना लग जायेगा । वहाँ पर तो जाना नहीं है । - मैंने मुश्किल से उन्हें रोका ।

...और पानी करवाने का ठिकाना करवाकर वह लंगडाते पैर से चलते-चलते परिसर के बाहर गए.. वहाँ पर ही 15-20 गोस्वामी कोम के घर निकले, वहाँ से जितनी मिली उतनी गोचरी लेकर आ गए ।

और बोल रहे थे कि - ''आपकी गोचरी बराबर नहीं आयी है । सामने 2-4 दुकाने हैं । वहाँ पर ट्राय कर लूँ ।'' आखिर फिर से हाईवे के ऊपर गए और सभी की विशिष्ट भक्ति की..

उसके बाद, पाणी को गरम करवाने के लिए वहाँ पर खडे रहकर करवाना होगा वैसा लगा ! इसलिए फिर से उसे सँभलाने में लग गए । 2-3 राउन्ड लगाने के बाद मुश्किल से पानी हुआ । ऐसे 5-7 राउन्ड होने के बाद सब गोचरी + पानी दोनों का काम हुआ ।

तब तक तो मेरा एकासना भी होने आया था और हेम वि. को तो अट्ठम की ऊपर आंबिल (दाल बिना का) और उसके ऊपर उपवास का पारणा (आंबिल से) करना बाकी था ।

उमता में बीच का आंबिल हुआ उसके बाद लगभग 55 कि.मी. का विहार हो गया था । पैर की पीडा चालू थी तो भी आकर यानि कि गाथा करने के बाद आखिर में

1.30 - 2 बजे आंबिल करने बैठे.. हमारा हो जाने के बाद।

ऐसे 'तपस्वी' और साथ-साथ में साधमक वात्सल्य, धीरता, परिसह के सामने अदीनता, अनिशुद्ध निर्दोष गोचरी की अखंड दृढ निश्चय और कल्याण का उत्सव मनाने का भाव.. यह एक एकमेक होकर देखने से मेरा हृदय भीग (भर गया) गया था.. धन्य है जिनशासन की सर्वांगीणसुंदर स्वार्थ निरपेक्ष साधुता को..

* * * * *

(13) ज्यादातर मिश्रदोषवाला पानी और कभी-कभी तो आधाकर्मी पानी लेना ही होता है.. (पडता) था यह तो इनके लिए फिक्स हो गया..

इसलिए, वे खास ध्यान रखते थे कि वापरने में भी जितना लेना पडे उतना ही लेते थे.. कम से कम पानी में चलाते थे।

लूने निकालने में खास किफायत करते हैं..

पोने टोकसे से हो जाता हो तो एक टोकसी भी नहीं वापरते हैं.. मांडली के सभी लूंने निकालने हो तो उसमें भी ज्यादा मेहनत करते हैं.. ज्यादा घीसकर साफ करते हैं। परंतु पानी तो कम ही लेते थे।

'दोषित पानी है' - ऐसा उनके मन में हमेशा बजता ही रहता हो ना ? वह रीति से पानी को ज्यू-त्युं वापरते नहीं हैं।

एक-एक बुंद का हिसाब रखकर बचाते हैं !!

* * * * *

(14) आंबिल शाला में से दूसरी रसोई तो नहीं वापरते थे परंतु, खाखरा-चने की भी स्वयं पूरी तलाश करके और वहाँ की सभी आवक-जावक को ख्याल में लेकर 'निर्दोष ही है' ऐसा लगा हो तो ही ऐसी वानगीयाँ वापरते थे।

उसमें भी फिर से सीधा ऐसा नहीं पूछते.... "कितने साधु-साध्वीजी आते हैं ?" क्या वहोरकर जाते हैं ?" वगैरह। क्योंकि उन्हें सालों पहले ऐसे अनुभव हुए हैं कि उसमें बहुत बार घोटाले भी हुए हैं पूरी शोधनहीं होती, कही तो हमें जैसे चाहिए वैसा जवाब मिल जाता है।

"बहुत कम आते हैं" वगैरह अथवा तो ऐसी सभी पृच्छाओं से हैरान होकर सीधा बोल देते हैं - "महाराज साहेब तो बहुत आते हैं, हमारे वहाँ पर फुल लाभ मिलता है" ऐसा तो बहुत बार बनता है।

इसलिए उनका पूछना वैसा ही होता है कि जवाब सच्चा मिले और सामने वाले

को शायद पता भी न चले कि ''म.सा. क्या पूछना चाहते हैं ?''

जो कि यह बात उनके प्रति बहुत गुणानुराग हो रहा है इसलिए यहाँ पर लिखी है बाकी तो इसमें ये महात्मा इतना समय बिगाडते हैं कि उसमें एक स्वाध्याय का तो व्याघात होता है और साथ में यहाँ पर महात्माओं को भी इंतजार करके बैठना पडता है ।

मांडली में भी टाईमसर आते नहीं है, सभी का होने आएँ फिर अकेले ही बैठना होता है । इसलिए मुझे बहुत बार उनके स्वभाव के ऊपर अरूचि हो जाती है ।

'भले ही स्वयं की गोचरी लाकर वापरनी हो तो भी मांडली भोजंन तो संभालना ही चाहिए ।' वगैरह विचार बहुत बार आए हैं । तो भी हमें तो उनकी यह विषय में (गोचरी गवेषना) गहराई की, ऊँचाई की मात्र थोडी झांखी ही देखनी है । जिससे ख्याल आता है कि क्या इनको गोचरी के दोषों के प्रति जुगुप्सा है ! क्या इनकी परिणति है !

* * * * *

(15) आंबिल शाले में खाखरे-चने वगैरह वहोरने भी हो तो परोसने वाले भाई के पास से तो नहीं वहोरते थे क्योंकि वह लोगों को परोसने का भी लाभ लेते हैं । दूसरे साधु-साध्वीजी भ. वहोरे उसमें रोटी, पूडला ऐसी सभी वस्तु हाथ में लेकर वहोरानी होती है इसलिए वहाँ प्राभृति का, मिश्र वगैरह दोष से भी दोषित होता है वहाँ पर वहोराने वाले का हाथ भी उससे पूति-दुष्ट बनता है । भले ही 2 घंटे पहले वहोराया हो या फिर परोसने का ही काम किया हो तो सूक्ष्म-अंश चिपके रहने की शक्यता से तो नकार नहीं सकते हैं? इसलिए सूखी वस्तु भी सूखे (एकदम सूखे (कोरे) कोई भी खाने की चीज को स्पर्श भी न किया हो वैसा) हाथवालों के हाथ से ही वहोरते थे ।

* * * * *

(16) वह सूखा-पक्का भी फिर से बाहर परोसने में फिरते हो उसमें भी नहीं क्योंकि उसमें भी पूतिवाले हाथ लगने की पूरी परंपरा खडी होती है और जो गैस के नीचे थाली में निकाले हुए चने होते हैं । तो उसमें वह चूल्हा मिश्र दोषित हो तो उस ताप का भी दोष खडा होता है, इसलिए कभी जल्दी जाकर वहोरने से भी काम नहीं होता । आगे के दिन थाली भरी हुई होती है उसमें ही नये डालते हैं...... विगैरह कौन देखने जाये ? इसलिए कोई भी रीत से पूति दोष ना लगे उसकी एकदम सख्ताई से जाँच करने के बाद भी मिले तो ठीक, बाकी, 'इसके बिना कहा पेट नहीं भरता ।' यह उनका

जवाब फीक्स ही है, और इसमें तो और दूसरी भी संभाल करते होंगे, पर यह तो कभी दूसरों के पास मँगवाते हैं उसमें विधेय वाक्य साथ में निषेधवाक्य भी सुनाई देते हैं, उससे ख्याल आया हो कि ऐसा ऐसा नहीं वहोरते । उसमें पुनः पीछे के कारण का विचार करें तो तुरंत लाईट हो जाती है कि बात तो यह बराबर है !

* * * * *

(17) खाली आंबिलशाला की बात नहीं है

सभी रसोडे में इन्हें मुश्किलें होती ही हैं ।

जो कि धामक, सामाजिक या पारिवारिक ऐसे विविधप्रसंगों में किसी भी प्रकार का भोजन हो..

अथवा श्री संघ का स्वामि वात्सल्य हो..

अथवा तो, सामूहिक आंबिल-एकासना वगैरह आयोजन हो या आंबिल शाला वगैरह स्थान.. यह सब ऐसे तो संखडी ही होने से इनकी सत्ता चले तो सबसे पहले यह खुद का तो वहोरने के लिए जायेंगे ही नहीं, भक्ति करने तो सबसे पहले दौडेंगे । परंतु मेरी या इनके गुरूदेव की आज्ञा से स्वयं का भी लाना हो तो वहाँ की संख्या आदि की बराबर गिनंती करके फिर ही आगे बढते हैं । खाली 'सकल संघ को आमंत्रण है' या फिर 'संघ स्वामी वात्सल्य है' इतने से उनके लिए कल्पय नहीं बन जाता ।

भले ही पूरे संघ का भोजन वहाँ पर होने से कोई भी घर में रसोई नहीं मिलनेवाली हो तो भी दूर जाकर कही से भी ठिकाना ढूंढ लेते थे । परंतु संघ के सभ्य की अपेक्षा से 10% से ज्यादा संयमी हो ऐसी परिस्थिति में वहाँ पर खोज करके ही छोडते थे । ऐसा 3-4 साल में कम से कम 8-10 बार हुआ है ।

अरे ! कभी-कभी तो 10% से कम हो तो अनिश्चित ज्यादातर साधु-साध्वी भ.की. संख्या हो वहाँ तो पूछे बिना रह नहीं सकते हैं ।

गोचरी की गवेषना में इनतक पहुँचना बहुत भारी है, शायद असंभव भी !

* * * * *

(18) जहाँ पर संख्या की दृष्टि से निर्दोष हो सके वैसा हो वहाँ पर भी अमुक ओली जैसे सामूहिक प्रसंग वगैरह में जो ऐसी संभावना हो कि साधु/साध्वी भ. आएँ तब रोटी, ढोकला, ढोसा, मालपुआ, कचोरी वगैरह उतारने चालु हुए हैं, तो वह तेल/तवा वगैरह पूति दोष वाली हो जाने से ऐसी वस्तु उनके लिए त्याज्य हो जाती है। चमचे भी इधर-उधर होने की जहाँ पर संभावना हो वहाँ पर उनके लिए सब वर्ज्य बन

जाता था ।

* * * * *

(19) समझो कि इनको रसोडे में वहोरने जाना पडा, तो उसमें भी हमेशा के लिए वह सीधे-अंदर-जहाँ पर रसोई बनती हो वहाँ पर ही जाकर जो भक्ष्य होगा वही वस्तु वहोरते हैं ।

उसके कारण..

* भक्ष्याभक्ष्य की पृच्छा किये बिना तो ऐसी जगह से एक भी वस्तु लेते नहीं हैं । अब काउन्टर पर खडे रहते वेटर्स को तो वस्तु की बनावट वगैरह की कहाँ से खबर हो ?

- जैनभाई हो तो उनका जवाब भी फिक्स ही मिलता है (होता है)

''साहेबजी । सब आज का ही है । एक भी चीज अभक्ष्य नहीं है ।''

- और, कितने तो इतने आत्मविश्वास से दावा करते हैं कि,

''साहेब ! हमने उपधान / नव्वाणुं / संघ सब किया हुआ है । हमारे घर के कोई भी प्रसंग में 'छोटी सी चीज भी अभक्ष्य न आएँ-' उसकी पूरी तकेदारी (ध्यान) रखते हैं । पानी भी पूरे रसोडे में छाना हुआ ही उपयोग में लेते हैं । सुबह सूर्योदय के बाद ही चूल्हे चालू करते हैं ।''

ऐसी-ऐसी बहुत सी बातें करते हैं और यह मुनिवर को कम से कम 8 - 10 अनुभव ऐसे हुए हैं कि - ऐसी अति-चुस्तता की पूरी गारंटी देनेवालों के सामने ही रसोइए को बुलाकर हकीकत पूछी, तो 1 - 2 वस्तु में व्यवस्थित घोटाला निकला ।

वो 'श्रमणोपासक' फिर कुछ न कुछ कहकर बात को टाल देता ।

उसके सिवाय के सामान्य विश्वास देनेवालों को तो चमकारे बता देने के प्रसंगों की कोई गिनती हो ऐसा नहीं है ऐसा उन्होंने मुझे बहुत बार कहा है !

अर्थात उनका फिक्स नियम था कि मात्र मुख्य रसोईया भाई भी नहीं परंतु वे-वे वस्तु (चीज) बनानेवाले एक-एक कारीगर को पकड-पकडकर जाँच करने के बाद ही वहोरते हैं, जिन चीजों की ऐसी खोज संभव न बने, वह सभी चीजें छोड देते हैं ।

क्यों कि, बाहर खडे रहकर पूरे स्टाफ को कहाँ से बुलवायेंगे ? और जाँच किस तरह से करेंगे ? इसलिए, अंदर जाने का पहला कारण (जाँच के लिए ।) !

* दूसरा, वहोरने के लिए काउन्टर के ऊपर रखी हुई वस्तुओं में से

सब्जी/चावल/खमण-पातरा वगैरह फरसाण / नमकीन / पहले बनी हुई मिठाईयाँ-मोहनलाल वगैरह के शीरा वगैरह.. और आंबिल में भी घेंस (गैस), खिचडी, थुली, घुघरी, खीचु, ढोकली, राब वगैरह.. जो एक साथ में बन जाएँ - ऐसी सभी वस्तुओं की स्थापना होने से उसमें स्थापना दोष लगता है, इसलिए वो उनको नही चलता

(साध्वीजी भ. को इस बाबत में अपवाद समझकार भी जब संखडी का लेना ही पडे वैसा हो बाहर से ही ले ले वह योग्य नहीं गिना जाता । संख्या ज्यादा होने से उनके कारण जब अंदर व्यवस्था का क्रम टूटे.. वैसा लगता हो तो फिर अपेक्षा से छोटा दोष स्वीकार लेना ज्यादा उचित है । क्योंकि परिस्थिति ही ऐसी है कि गोचरी के लिए दूसरे घर वगैरह का विकल्प ही नहीं)

* रोटी, पुरी, मालपुआ, घेवर, पुरणपोली, खमण, भजिया, कचौरी, समोसा के आंबिल में - इडली, पुडला, ढोकला, रोटला, पापड वगैरह द्रव्य हो.. ऐसी सभी....... एक के बाद एक धाण में अथवा तो एक-एक करके भी फिर थोडी-थोडी उतरती (तैयार होकर) बाहर आती रसोई में तो आधाकर्मी होने की पूरी संभावना होती है । इसलिए वह तो.. 'अशक्य परिहार' भी नहीं गिन सकते । इसलिए इनको यह चलाने का सवाल ही खडा नहीं होता है ।

(ऐसा ही फ्रुट / ज्युस / आम का रस वगैरह के लिए समझ लेना चाहिए -वह सभी में जो निकालकर 48 मिनट पहले संयमी के लिए अलग रख दिया हो, तो तो सीधा आधाकर्मी जैसा बडा दोष होता है (लग जाता है ।)

* शायद बाहर रहकर ही तुरंत अंदर तैयार हो ऐसा मंगवाए उसमें एक तो वह लानेवाले व्यक्ति के ऊपर भरोसा रखे वैसा होना चाहिए । नहीं तो एक बार तो झूठ बोलकर उतरा हुआ (आधाकर्मी) लेकर आएँ । परंतु वहाँ पर वस्तु हाजर (उपस्थित) नहीं होने से 'लाभ न हो ऐसा वह नहीं होने देते हैं । उसमें फँसने की सक्यता रहती हैं । दूसरा, बीच में पानी-लीलोतरी-त्रस विराधना की संभावना भी होने से अभ्याहत भी हो जाता है ।'

* इसके सिवा बडे खाते में और ज्यादा लोगोके बीच कौन कौन से दोष लग जाए ये कल्पना मे भी न आए ऐसा बहुत बार बनता है ।

* * * * *

(20) आंबिलशाला में कभी-कभी पक्का नमक मंगवाया हो तो भी वहाँ से दूसरी (दोषित) रसोई वहोरनेवाले महात्मा को स्पष्ट ख्याल ही होता है कि नीचे मुंग

का पानी/सूप ऐसा कुछ भी हो तो वह तरपणी की टोकसी के ऊपर वहोरा हुआ पक्का नमक इत्यादि कुछ भी इनको नहीं चलेगा। एकदम अलग लाना जमता हो तो ही वह 'हाँ' बोलते हैं। क्योंकि पक्का नमक उन्होंने मंगवाया होने से टोकसी उनको ही देने में आती है और वह टोक्सी तो नीचे से दोषित चीजों से बिगडा हुआ होने से वह साफ करने में तकलीफ होती है। इसलिए वह नहीं मंगवाकर चला देते हैं।

सबसे ज्यादा खबर तो शायद पूति दोष से बचने के लिए यह महात्मा लेते होंगे। ऐसा कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसलिए, जिन घरों में ग्लानादि के लिए दोषित अनुपानादि बनाते हों वह पूरा घर ही इनके लिए त्याज्य हो जाता है।

* * * * *

(21) ऐसा क्रीत दोष में..

- शिल्पालय - कलिकुंड तीर्थ - शंखेश्वरजी में मुख्य भोजनशाला वगैरह स्थान में 'हमेशा वैयावच्च फंड की व्यवस्था होती है। इसलिए रसोई भले ही यात्रिकों के लिए बने। परंतु जो सुपात्रदान का लाभ मिलता हो तो उसका भाग इसकी रकम के (फंड) में से, पूरी क रते है।

- ऐसी कितनी भोजनशालाओं में या संघों में ऐसा रिवाज चल रहा है कि जितने म.सा. वहोरने पधारे, उसके अनुसार से कोन्ट्राक्टर को अनिश्चित रकम देनी पडती है।

- अहमदाबाद के एक श्री संघ में सामूहिक वर्षीतप था, वहाँ पर बियासने के रसोडे में मुश्किल से 3/4 साधु-साध्वीजी भ.आते थे, परंतु रसोईया भाई को नुकसान न पहुँचे इसलिए नीतिमान ट्रस्टीयों ने निश्चित किया था कि 8/10 म.सा. आएँ ऐसी तैयारी रखकर हमें 1 डीश का भाव कहना। इसलिए हमेशा रसोई का प्रमाण 100/110 तपस्वी के प्रमाण में ही बनता परंतु अंदरखाने वह चार्ज में वैयावच्च की रकम आई हुई कही जाती है।

ऐसा सब जहाँ पर भी बनता हो वहाँ सभी ही आईटम यह महात्मा के लिए अकल्प्य है।

* * * * *

(22) स्थापना दोष भी एकदम सख्ताई से टालते हैं। -

- झवेरी पार्क संघ में डहेलावाले समुदाय में एक दीक्षा प्रसंग में उनको एक महात्मा के साथ जाना हुआ। वहाँ पर एक बार जल्दी जाँच की तो दाल पक रही थी। ओघा देने के बाद तुरंत, सूर्योदय के बाद फिर, जब पहुँचे तब मुश्किल से 1/2 मि.

पहले की तडका (वघार) हो गया था परंतु साईड में एक बर्तन में पर्याप्त दाल निकाली हुयी थी, तो भी वह दाल नहीं वहोरी, स्थापना के लिए अलग निकालकर रखी इसलिए फिर 1 सेकंड के बाद भी वे नहीं चलाते हैं।

* * * * *

(23) 'अभ्याहृत दोषवाला - दूसरे गाँव से लाया हुआ या वहीं गाँव में से सामने के उपाश्रय में वहोरने लाया हुआ तो लेने का सवाल ही नहीं। परंतु बहुत बार ऐसा होता है कि सोसायटी या एपार्टमेन्ट में वहोरने जाते हैं तब आसपास के थोडे आगे के घरवाले या ऊपर नीचे के फ्लोर पर रहते भाविक जो घर में म.सा. वहोरते हों वहाँ पर कोई वस्तु ले जाएँ और विनती करे। खास करके, एक बार उनके घर पर वहोरकर आए हों... और तब कुछ याद न आया हो, उसके बाद एकदम उपयोग नहीं रहने से 'लाभ लेना रह न जाएँ' जैसे अच्छे भाव से ही ऐसा लेकर आनेवाले होते हैं।

ऐसा होने से यह मुनिवर स्पष्ट निषेधकरके कितनी भी अच्छी वस्तु हो तो भी वहोरते नहीं हैं, दूसरे घरों से भी लायी हुई नहीं लेते हैं।

अरे। एक ही घर में दूसरे कमरे में से या गैलेरी में से या स्टोर रूम में से जो कुछ भी लाएँ और बीच का भाग उनकी नजर में आए वैसा न हो तो तब भी वहाँ से नहीं लेते हैं।

* * * * *

(24) बहुत बार ऐसा बनता था कि,

घर बताने साथ में आए हुए को ख्याल में न हो तो आगे जाकर बेल बजाकर घर खुलवाते हैं.. ऐसा होने से पहले अटका (रोक) देते हैं.. तो भी अनजाने में जो बेल बजा दी हो तो, तो फिर वह घर में से मुनि वहोरते नहीं हैं।

* * * * *

(25) ऐसा संघट्टे के दोष में भी..

अगर कोई भीगे हाथवाले या भीगे-बालवाले व्यक्ति दरवाजा खोलने आए तो वह घर रद्द.

घरमें प्रवेश करनेसे पहले ख्याल आ जाए और इनका 'धर्मलाभ' सुनकर किसी पानी का बर्तन-हरी-सब्जी-अनाज वगैरह सचित्त पदार्थ खिसकाने में आए.. और उसका कारण यही कि उन्हें चलने में जगह मिले..

तो वह घर भी रद्द..

स्वयं के अंदर जाने से कोई सब्जी सुधारते या अनाज वगैरह साफ करते-करते खडे हो जाएँ, इधर-उधर खीसे-अथवा तो खाली अटक जाएँ, तो भी वह घर रद्द..

अंदर जाने के बाद भी इधर-उधर जाने में वहोरने की चीजें जहाँ पर भी रही हो वहाँ से लेकर आगे करने में, चमचा-चमची जैसी को ढूँढने में ऐसा कुछ भी करने में जो कच्चे पानी का बर्तन, आधा सुधारा हुआ नींबू, मसाले का डिब्बा, कच्चा तेल-जीरा वगैरह, भीगोये हुए दाल-चावल वगैरह, टमाटर-मिर्च-धनिया.. ऐसी कुछ भी सचित्त वस्तु (चीजें) हिल जाएँ अथवा तो गृहस्थ से जरा भी स्पर्श हो जाएँ तो.. वह घर भी रद्द...

आज के घरों में या स्थानकवासी-तेरापंथी वगैरह घरों में बहुत बार बासी रोटी वगैरह खाद्य पदार्थ रहते हैं.. यह वस्तु तो हमें चलेगी नहीं वह बराबर परंतु दूसरी ताजी रसोई वगैरह वहोरते वक्त भी वह व्यक्ति बासी चीजों के बर्तन वगैरह को भी जरा भी टच हो जाएँ तो.. वह घर भी रद्द..

कई-कई चीजें टेबल, टीपोई, स्टेन्ड के ऊपर रही हो और वह सभी लेने में नजदीक में रहे हुए फल वगैरह की टोपली या ऐसा कुछ भी सचित का संघट्टा हो वैसा कुछ हिल जाए, अथवा जो लेना हो उसका भार.. लेते वक्त झटका वगैरह के कारण ऐसा कुछ बने कि उसकी असर सचित द्रव्य पर हुई हों.. अगर ऐसी शंका उत्पन्न हो तो वह घर भी रद्द...

ऐसी तो बहुत-सी बाबतों को ध्यान रखने के बावजूद भी किसी में भी थोडा भी अनंतर या परंपरा संघट्टा अगर हो तो.. उसकी जरा भी संभावना हो तो वह घर उनके लिए वहोरने के लिए रद्द...

(26) जहाँ पर गैस, लाईट, पंखा, टी.वी. इत्यादि बंद करने में आए... तब वहाँ से भी तुरंत लौट जाते हैं.. कितनी बार अजैनों के घर में ऐसा होता था।
बहुत बार हाथ धो लेते हैं.. उस समय वहाँ से कुछ भी नहीं वहोरते हैं परंतु उन सभी को हमारे आचार की बातों को सामान्य से समझाकर निकल जाते हैं।

* * * * *

(27) विहार के दौरान जहाँ आंबिल शाला से आधाकर्मी पानी ही वहोरना हो अथवा तो मिश्र पानी वहोरना हो तब वहाँ जो ढोकले के नीचे का पानी या ऐसा कोई पानी मिल जाए तो वह वहोर लेते हैं। ढोकला तो मिश्र होते हैं तो वह गोचरी में नहीं चलते पर उसका पानी भले कहलाये मिश्र, फिर भी दूसरे पानी की मिश्रता में 80%-

20% हो या 90%-10% और जब ढोकले के पानी में 50%-50% या 30%-70% ऐसा भी बन सकता है । इसलिए इस तरह अल्पतर दोष होता है ।

* * * * *

(28) अमुक जगह पर.. तपोवन में चावल करने के लिए जो पानी रखते वह निर्दोष ही होता है, पर वह उबल जाये उसके पश्चात ही अंदर चावल डालते हैं, उस टाईम पर वहाँ हाजिर रहना पडता है । उनके पाठ का टाईम ! क्या करना? यह सोच रहे थे । वहाँ गोचरी-पानी वहोरानेवाले भाई अनुभवी, इस महात्मा की वहोरने की पद्धति से होंशियार हो गये थे । उन्होंने सामने से ही कहा साहेब ! मैं एक बाल्टी में रखूँगा, आप बाद में आकर ले जाना ।

बात जँच गई, सिर्फ स्थापना दोष से कार्य पूरा होगा । दोषित से छूटने का परिणाम हो, वहाँ लगभग रास्ता मिल ही जाता है ।

* * * * *

(29) उनके आयंबिल के पारणे आये तो मानो रंगोली का त्यौहार, दिवाली आई या फिर कहो होली !

कुछ उल्टा मत समझना पर इतना ही कि सूंठ, पिपरा मूल, हल्दी, शक्कर, धाना जीरा ऐसा भी बहुत कुछ उनके मेनु में होता है । गोचरी आती है तब रंगबिरंगी टोक्सीयाँ सामने दिखती है । अगर वे स्वयं जाते हैं तो इन सबके लिए अलग-अलग टोक्सी नहीं रखते । क्योंकि, जितनी टोक्सी इन द्रव्यों में रीजर्व हो जाये तो दूसरी अनुकूल वस्तुओं का योग हो तो फिर नहीं ले सकते, छोडना पडता है, अथवा तो अन्य द्रव्यों के साथ मिक्स करके लाना पडता है । हम सभी गोचरी जाते हैं इसलिए इन सबका अनुभव तो होता ही है । इसलिए तुरंत समझ जाते हैं ।

इसलिए यह मुनिवर्य भक्ति का लाभ चूक जाये यह नहीं चलाते हैं । तो क्या करे ? उन्होंने इसका अच्छा उपाय ढूँढ निकाला, ऐसी सभी उनकी व्यक्तिगत (?) वस्तुएँ खाखरे के उपर वहोर लेते हैं ! इसलिए ऐसे करते 2-4-5 खाखरे के ऊपर से स्वयं को जितना लेना हो वह सब लेकर झटक-झटककर जिसे खप हो (जरूरत हो) उसे दे देते हैं ।

और खाखरा हल्दीवाला या सूंठवाला हो, दूसरों की अच्छी भक्ति ना हो तो स्वयं ही दाल या सब्जी में बराबर चूरकर नमक करके वापर लाभ हैं ।

वैसे भी उनको फिक्स ही है कि पारणा जब होता है तब सब्जी का पातरा वे स्वयं

ही लेते हैं, तो नीचे उतरा हुआ, सभी के घरों की प्रसादी के रूप जितना भी तेल होता है वह सब वापरने का नाम मिल जाता है और इस तरह पूरी मांडली की विशेष भक्ति भी हो जाती है।

(उनके पास से जानने को मिला - डॉ. संजयभाई की परमीशन उन्होंने ले ली है। उनके कहने के अनुसार इतना तेल, मसाला, एक साथ (एक ही दिन में) जाये तो भी कोई नुकसान नहीं ! इसलिए घबराने की जरूरत नहीं है।

यह बात दूसरे ट्रेक पर चढ गई। मेरी बात थी उस परचुरण की। उनको वे वे तव की पूत हेतु यह लेना होता है इसलिए सभी घरों में इन वस्तुओं की विनंती हो ऐसा नहीं होता। कभी पूरी झोली (गोचरी आ जाये) वहाँ तक एक भी घर में विनती नहीं होती ऐसा भी बनता है। उसमें हल्दी-धाना जीरा की तो नसीब से ही कोई विनंती करते हैं। हाँ !

अभी 4-5 अलग-अलग क्षेत्रों में ऐसा अनुभव हुआ है कि महाराज साहेब हमने 'सुपात्रदान विवेक' पढी है इसलिए तबसे हम विनंती करते हैं.. इसलिए उनके नाम से छपी यह पुस्तक उनके लिए तो लाभकारी ही बन गई ऐसा हमारे गोचरी डीपार्टमेन्ट के एक महात्मा ने मुझे वैसा रीपोर्ट दिया है। पर अधिकतर तो विनंती नहीं ही होती ऐसा ही बनता है।

इसलिए उनका नियम है कि यदि स्वयं गोचरी जायें तो 'याचना परिषद' तरीके ऐसी सामान्य चीज मांगनी यह तो निर्जरा का कारण ही है, वस्तु भी सभी ऐसी है कि 100% कारणिक ही मानना पडता है। इसलिए वह सामने से योग्य घरों में पूछकर वहोरते हैं।

पर सूक्ष्मता तो उसमें यह है कि ऐसी वस्तुएँ लगभग मसाले के डिब्बे में या कबाट में होती है। उस डिब्बे में जीरा और राई भी होती है। कबाट में से लेने जाते वक्त आजुबाजु के, आगे के वर्तनों को खिसकाना पडे ऐसा भी बनता है, तो इन सभी में संघट्ट की संभावना रहती है इसलिए वे तुरंत निषेधकर देते हैं। यदि सामनेवाला कारण पूछे, तो कारण बताकर सामनेवाले के भावों को ठेस ना पहुँचे इस तरह सँभाल लेते हैं।

* * * * *

(30) दूसरा, अभी के घरों में ड्रोअर बहुत प्यापक हो गये हैं, इसलिए उसमें से लेना पडे वहाँ अथवा तो लेटेस्ट फनचर वाले रसोई घर में पूरी ट्रे की ट्रोली ही बाहर

आती है, उसमें ऐसे डिब्बे डिब्बी रहते हैं, उसमें से निकालकर लेना हो तो वह नहीं लेते । पहले से ही पूछ लेंगे "कहाँ पडा है ?" यदि कोई सुरक्षित (उनकी दृष्टि में) स्थान से लेना हो तो ही आगे बढते हैं । बाकी सीधा ना ही कह देते हैं । नहीं खपेगा ।

इसलिए ऐसे ड्रोअर विगैरह में दूसरे भी डिब्बे विगैरह साथ में होते हैं तो उसमें तल / जीरा / नमक / राई ऐसी कोई ना कोई सचित वस्तु होने की संभावना होती ही है तो उससे संघट्टा का दोष लगता है और वह नहीं चलाते पर कभी अंदर की सभी वस्तु उचित ही होती है ऐसा बनता है - फिर भी वे छोटे-छोटे रोलींग की हेरफेर से साईड के भाग में त्रसादी की विराधना होने की पूरी संभावना होने से ही वे 'प्रादुष्करण' जैसा दोष भी नहीं स्वीकारते हैं ।

✻ ✻ ✻ ✻ ✻

(31) यह तो स्वयं गोचरी जाने का बने तब की बात ! पर यदि दूसरों के पास मँगवाना हो तो पहले नंबर पर यह जान ले कि जानेवाले महात्मा किस प्रकार की संभाल लेनेवाले हैं । उनको ऐसी गवेषणा में दिलचस्पी है ना ? तो ही, ऐसों के पास मँगवाते हैं । जो हमेशा साथ में होते हैं वे तो इनसे परिचित हो जाते हैं । तो उस प्रकार की ही गवेषणा करके गोचरी लाते हैं ।

पर जभी कोई दूसरे ग्रुप के कभी इकट्ठे होते हैं । पहली बार मिलते महात्मा बहुत भाव से उनके लाभ लेने की तीव्र भावनावाले निकले, तब उनको संतोष देने के लिए विचारना पडता है कि इनका क्षयोपशम व्यवस्थित है या नहीं । यदि थोडी भी शंका हो तो ऐसी कोई भी एक्स्ट्रा वस्तु का नाम ही नहीं लेते, सिर्फ स्वयं को निश्चिंत ख्याल आये कि यह वस्तु मँगाने में कोई दिक्कत नहीं आयेगी तो 1 - 2 वस्तु कह देते और उसमें भी 2/4 सूचन-सावधानी-सँभाल की भेंट भी देकर ही छोडते ।

अब समझो कि उनको विश्वास बैठा हो ऐसा कोई जाता हो तो इतना कह देंगे कि यदि सामने से विनंती हो तो ही हल्दी वि. वस्तुएँ वहोरनी । उसमें भी ड्रोअर वि. उपर कहे ऐसे एक भी दोषवाली तो नहीं ही !

परंतु, स्वयं जाते हैं तो याचना करते हैं और दूसरों को सामने से वहोराये तो ही वहोरना ऐसी शरत रखते.. ऐसा क्यूँ ?

उसमें भी उनकी जितनी यदि 'याचना' यह परिषद है तो यह परिषद दूसरों को क्यों सहना पडे, दूसरों को इसका सामना क्यों करना पडे, ऐसा नहीं होना चाहिए । भले वह महात्मा भी तैयार हो । उल्टा ऐसी वस्तुएँ तो विशेष भक्ति से वहोरकर लायें कि जिससे

तपस्वी के आशय के अनुसार उनके पारणे सार्थक हों । पर तो भी वे यही विचारते हैं कि ऐसी परिस्थिति में 'नय' ऐसा लगाना कि **'आहोसण भिक्खाए'** नहीं होना चाहिए । उसके बिना कुछ अटकता तो नहीं है तो क्यों सामने से याचना करके मँगाना ? मेरा पुण्य होगा सचमुच आवश्यकता होगी तो कहाँ तो विनंती होगी ही न ! परमात्मा की आज्ञापालन के परिणाम का इतना परिणाम तो मिलेगा ही ?

ऐसी कोई ना कोई श्रद्धा-समझ की नींव पर उनका दिमाग बहुत-बहुत विषय में स्पष्ट होता है । और यदि ऐसी वस्तु में ऐसी शरत रखते हैं तो दूध-घी-गुड की तो बात ही कहाँ रही ? उसमें तो यदि स्वयं जाये तभी भी कभी भी 'याचना' नहीं करते, क्योंकि यह वस्तु सामान्य नहीं गिनी जाती है ना ?

* * * * *

(32) केला किस तरह वहोरना ?

पूरी छाल उतारकर ? या..

आधी छाल उतारकर ?...

उसकी चर्चा हम लोगों में हुई थी । दोनों में दोष दिख रहे थे । तुमको आश्चर्य होगा, राजकोट में और उसके बाद भी बहुत बार पारणे के दिनों में उन्होंने छाल के साथ ही केले वहोरे, दूसरों के पास इस तरह ही मँगवाते हैं..... और केला और छाल दोनों वापर लेते हैं । केले की छाल शरीर के लिए अनुकूल ही है, इसलिए उनको वापरने में उनको कोई तकलीफ नहीं पडती । स्वाद तो देखना ही नहीं है ।

* * * * *

(33) गोचरी में यह मुनि बहुत पूछपरछ करते हैं ।

मुझे बहुत बार ऐसा लगता कि - सामनेवाले अति पूछपरछ से अधर्म पाते होंगे ।

पर एक-दो-पाँच नहीं, पचास अनुभव ऐसे हुए कि जिसमें गृहस्थ बहुत-बहुत प्रभावित हुए । उन मुनि की चीवट से, चुस्तता भरी पूछपरछ से हषत हुए । मेरे पास खास आकर स्पेश्यल उनकी प्रशंसा करके गये ।

मेरी मान्यता दृढ बनने लगी कि साध्वाचार का पालन आज भी गृहस्थों को धर्म की प्राप्ति कराता है । उपदेशादि से अधिक आचार-दर्शन श्रेष्ठ शासनप्रभावना में गजब का निमित्त बनता है ।

* * * * *

यहाँ तक हमने जो 33 मुद्दे देखे वे लगभग सभी गोचरी के 42 दोषों को टालने के लिए हैमविजयजी की नक्कर परिणति के विषय में या उसकी यतना के विषय में थे

।

अब,

उस 42 दोष से शुद्ध ऐसी भी गोचरी लाने के बाद - 'उन गोचरी के द्रव्यों में राग-द्वेष करके गोचरी वापरनी' चाहिए - इस स्वरूप इंगाल-धूम-संयोजना इत्यादि दोष लगाकर जो गोचरी वापरे.. तो उस दोषों में यदि संयमी फँस जाये..

तो उसकी शुद्ध गोचरी लाने की पूरी मेहनत पर पानी फिर जाता है - ऐसा सामान्य से कह सकते हैं।

.. यह बात प्राय: सभी ही संयमीयों को तो ध्यान में होती ही है।

तो,

इस विषय में यह मुनिवर कैसे जागृत हैं.. यह हम देखते हैं।

रसना-विजयी

रसना - विजयी

(1) गोचरी में आये हुए कोई भी द्रव्य की प्रशंसा या फरियाद करते आज तक मैंने उनको कभी भी नहीं सुना..

* * * * *

(2) यह क्या करते हैं ? - गेहूँ-चावल-बाजरी-मूँग-चना-तूअर-हरी सब्जी घी-गुड या केला.. वे सभी धान्य / कठोल विगैरह मूलद्रव्य को ही देखते हैं ! उसको लक्ष्य में रखकर 'शरीर को टेका किस तरह देना ?' वह विचार कर लेते हैं !

इसलिए, आयंबिल में - कभी सामूहिक आयंबिल हो, संयमी आयंबिल खाते में वहोरने वाले कम हों.. विगैरह संयोगों में एकदम निर्दोष गोचरी मिले वैसा हो...

शास्त्रीय रीत से 10% नहीं पर 5% ही साधु या साध्वीजी भगवंत हो, ऐसी कोई ना कोई गिनती से वहाँ वहोरने जा सकते हैं ऐसा आयंबिल का स्वामी वात्सल्य हो, ऐसा योग हो, तब उसका खास विचार करने में आयें कि - 'क्या वापरना ?'

(ऐसे दिन भले बहुत ही कम आते - वर्ष में पंद्रह-बीस बार सिर्फ पर जभी भी आते हैं तब...) ऐसे दिनों में उनके नित्यक्रम के 2/3 द्रव्यों से आयंबिल का पारणा होता है !

तब वे क्या करते हैं ?

गेहूँ-चावल तो प्रतिदिन पेट में जाते ही हैं । चने भी कभी-कभी मिल जाते हैं.. इसलिए, अब ऐसे दिनों में बाजरी, मकाई, उडद, मूँग, तुअर विगैरह दूसरे / धान्य/ कठोल से बनी हुई वस्तु मिलती हो तो उसे प्रधानता दे देते हैं । उसमें भी जो सादी वस्तु मिलती है, वही मँगवानी-लेनी.. यदि 'एक ही वस्तु पूति प्रमाण में मिले ऐसी हो, तो ऐसी एक वस्तु ले लेते हैं । जहाँ ऐसा ना हो वहाँ एक-एक वस्तु एक-एक धान की लाकर गोचरी कर लेते हैं । इसलिए 'कौन सी आईटम तैयार हुई है' - यह नहीं देखना पर 'किसकी बनी हुई है ?' - वही विचारना !

उदा. बाजरी की रोटी मिले तो वही लेना । वह मिले वैसा ना हो तो फिर बाजरी का भडकु (खीच) - धैंस ऐसा कुछ हों तो वह ले लेते हैं ।

मूँग में से कभी मूँग-कभी दाल-कभी मूँग का खिंचा (हाजिया), कभी मूँग का पानी बनाकर फेंकने के लिए रखे दाल के **छिलके**.. ऐसा सब मूँग-वर्ग में से एकाधले लें तो काम पूरा।

जब नये धान्य की वस्तु मिले ऐसा ना हों.. गेहूँ-चावल-चना का ही लेना पडे वैसा लगे, तो पहले नंबर पर गेहूँ की घुघरी या गेहूँ की राब.. ऐसा गेहूँ का कुछ लेकर गेहूँ का खाता पूरा कर देना।

ऐसे चावल में चावल (भात) धैंस-खींचा (हाजिया) इस क्रम में आगे बढते हैं।

संक्षिप्त में **मूल द्रव्य** को देखकर.. 'वह द्रव्य जो कम स्वाद की पुष्टि करते हैं।' वैसी सादे में सादी वस्तु ले लेनी.. यह एक ही नियम को पकडकर चलते हैं।

* * * * *

(3) इस तरह ही, एकासणा हो तब - यदि रोटी हो, तो तो फिर परोठा, थेपला, बाटा.. ऐसी कोई 'आहारवर्ग' की आईटम की जरूर ही नहीं।

सादे चावल आ जाये तो पुलाव या कोई दूसरी चावल की आईटम नहीं.

और कटलेट-कचोरी का त्याग है.. पर यदि उसका पूरण (मावा) मिल जाये तो केला-मटर के मावे को सब्जी की तरह ले लेते हैं।

इसलिए उनको दूधचलता है..। पर, सादा ही.. केसरीया दूध, दूधपाक.. ऐसा सबकुछ नहीं। 'मूलद्रव्य मिलता ही है ना। बस, कार्य पूरा..'

(4) एक बार तो गजब हुआ.. पनीर की सब्जी नहीं चलती, उसका आजीवन त्याग है, पर कभी पनीर डालना बाकी हो और ग्रेवी मिल जाये तो भी कोई बाधा नहीं है।

दूसरा..... 'उन द्रव्यों के द्वारा ही मिल सके ऐसे तवों का पोषण' जो दूसरे द्रव्य से कम मिलता हो.. वह हो जाये .... ऐसे पात्री भरकर वह ग्रेवी वहोरकर लाये।

ऐसी तो कितनी अधपकी वाली वस्तु है कि जिसका अंतिम पर्याय बाकी हो.. और वह मिठाई, फरसाण या दूसरी कोई वानगी के स्वरूप में मु. हैमविजयजी का त्याग ही हो.. पर यदि उनको ऐसा लगे कि उसमें आती अमुक वस्तु ऐसी है कि जिसमें ऐसे तव आते हैं। (एलीमेन्ट्स आते हैं) कि दूसरे में मिलते हों तो भी कम मिलते हों, ऐसी सब वस्तु चल जाती है।

...वहोरानेवाले ने भी शायद जिंदगी में पहली बार और अंतिम बार ऐसा वहोराया होगा.. वैसा तो बहुत बार इस महत्मा को हुआ होगा।

स्वाद की दृष्टि से तो - 'ना चले'.. ऐसा तो उनको कोई भी वस्तु में नहीं था और जिसमें ऐसा लगे कि - इसमें तो स्वाद की मुख्यता हो तो ऐसी एक भी वस्तु उनको नहीं चलती है ।

उदा. रोटी और तुवर की दाल मिलती ही है, तो फिर पूरणपोळी वापरकर क्या करना है । ऐसी उनकी सभी वस्तु में साहजिक परिणति ।

संक्षिप्त में - मूल-द्रव्य कौन सा है ? और उसका स्वाद कैसा है ? यह दो सवाल पूछ लेने चाहिए.. उसमें यदि पहले प्रश्न का जवाब आये कि प्रतिकूल नहीं है और दूसरे का जवाब यह हो कि अनुकूल नहीं है तो उनको उस ही समय स्वीकार्य बनता है ।

* * * * *

(5) उनको आंबिल हो या आंबिल के विश्रामरूप एकासना हो.. मैंने तो उपर के गणित के अनुसार ही हुए अनुभव को हजार बार देखा है ।

कभी प्रमाणमूत के लिए या वडीलजनों विगैरह की भक्ति का लाभ लेने के लिए अमुक वस्तु लाई हो । लाने के बाद बढ गई हो.. तब अनुकूल गिने जाये ऐसे द्रव्य (उदा. सो आयंबिल में ढोकला वि.) भी लें, पर उस वक्त खादपोषण ना हो इसलिए पात्रा में करीयातु भी साथ में ले लेते हैं और फिर स्वयं को जितना लेना हो वह सब पात्रें में एकरस हो जाये बाद में वापरते ।

* * * * *

(6) इस तरह एकासणा हो तभी भी, 'पोषण हेतु मिष्ठान्न वापरना जरूरी है' इसलिए लेना है - ऐसी उनके पूज्य गुरूदेवश्री की आज्ञा है इसलिए वे लेंगे, 5 -7 या कभी उससे भी अधिक टुकडे लेंगे । परंतु बहुलतया मुँह में सीधे नहीं जायेंगे ।

'जो वस्तु अच्छी कहलाती है ऐसी वस्तु का मूल स्वाद बिगाडकर बाद में ही वापरना - यह उनकी मानसिकता । इसलिए हैमविजयजी सब्जी में या दाल में या फिर हल्दी में मिठाई मिश्रीत कर लेते हैं, और इस तरह सब वापर लेते हैं ।

* * * * *

(7) हल्दी आई इसलिए तुरंत याद आया कि..

मेहसाणा में एक दिन उन्होंने संजयाई डॉ. के साथ सवा घंटा मीटींग की थी । मुझे गुस्सा आया.. श्रावकों के साथ बिना कारण क्यूं समय बिगाड रहे हैं ।

पर यह बात पूरी अलग ही थी,

संजयभाई को पूछने पर पता चला कि,

- वे बडी-बडी ओली करने के बाद सिर्फ 7-8 दिन पारणा करते हैं । इसलिए यह मुनिराज यह सब जानना चाहते थे कि

- शरीर को टिकाने के लिए कौन-कौन से तवों की खास जरूरत पडती है ?
- उसमें से कौन से तव ऐसे हैं, जो आयंबिल में नहीं मिलते ?
- सात दिन के पारणे में कौन से खुराक में से वह खुटते तव प्राप्त कर सकते हैं ?
- कौन सी वस्तु वापरने से नुकसान होता है अथवा नहीं होता ?
- ऐसी कौन सी वस्तु है जिसे वापरने से खास कोई लाभ नहीं है.. इसलिए शरीर की दृष्टि से बिनउपयोगी ?

इसकी ही चर्चा बहुत लंबी चली.. । कार्बोहाईड्रेट्स, विटामीन्स, प्रोटीन फेट (चरबी) विगैरह तत्वों की सामान्य माँग-स्रोत वि. की ही बात चली ।

इनकी उमर, इनकी श्रमण प्रधान दिनचर्या, सतत वांचन की प्रवृत्ति.. यह सब लक्ष्य में रखकर विटामीन-ए, बी-12, विगैरह की आवश्यकता अधिक रहती है.. फरसाण, चासनीवाली मिठाईयाँ, फलों में खास करके तरबूज, शक्करटेटी, अनानस विगैरह बहुत प्रकार और मेवे में काजू, किसमीस, पिस्ता, जरदालु विगैरह भी खास उपयोगी नहीं-कभी नहीं वापरो तो भी कोई खामी नहीं रहती ।

...ऐसी बहुत सारी बातें की थी ।

डेरीओं में सीधी ही प्रोसेसींग से बनता घी नुकसान कर सकता है..! ऐसा भी कहा था.. और साथ-साथ में.. दूध, गुड, घी, हल्दी, हरी सब्जी ऐसी ऐसी वस्तुओं को वापरने का संजयभाई ने सूचन भी किया था । इससे पारणे के सात दिन उनकी खुराक में इनका ही प्रमाण अधिक रहता है ।

मैं छाती ठोककर कह सकता हूँ, कि इनके पास जीभ नाम की कोई वस्तु ही नहीं है ।

(ए) आपको आश्चर्य होगा, पर आधी टोक्सी जितनी हल्दी वे एकासणा में प्रतिदिन वापर लेते हैं । गुड-घी को रोटी के साथ बराबर मिश्रीत कर देते हैं और बाद में आधी टोक्सी हल्दी एकदम हिला देते हैं.. स्वाद की बात तो दूर ही रही ना ? यह सब एक किया हुआ वापर लेते हैं ।

(बी) बहुत बार सब्जी में हल्दी डालते हैं, तो कई बार कटलेस कचोरी का

मावा कोई रसोडे में लेकर आये हों, उसमें

(सी) मोहनथाल, मैसूर पाक, बदामकतली वि. मेवे की मिठाई, नरम मोहनथाल, बदाम या मूँग की दाल का सिरा, दुधी का हलवा ऐसी सभी ही देशी मिठाईयाँ कहलाती है। जो शरीर के लिए 'पौष्टिक मिठाईयाँ' गिनी जाती है.. वह मिल जाये तो (कडक गुरू-आज्ञा होने से ही) वापरते सही पर उसमें से जीभ का कमिशन कट करने हेतु अंदर व्यवस्थित प्रमाण में हल्दी मिलाकर एकमेक करने के बाद ही वापरते हैं।

बाकी, अंगुर रबडी, रसमलाई, विगैरह सहित तमाम बंगाली मिठाईयाँ और सुतर फेणी, सोनपापडी जैसी फेन्सी मिठाईयाँ उनको संपूर्ण बंद। क्योंकि वह शरीर को ऐसी कोई शक्ति नहीं देती।

(डी) हल्दी का उपयोग लगभग कहीं पर भी बाकी नहीं रहता। फिर भले ना वह उडदपाक सालम - खजूर - मेथी गूंद पाक हो या पेत विगैरह हो एक ही नियम - 'पुष्टि होनी चाहिए, तुष्टि नहीं ही।'

(ई) दो-ढाई वर्ष पहले उनके पू. गुरूदेवश्री को इस हल्दी की बात का पता चलते ही इस वक्त एकदम पूर्वक निषेध किया कि 'इतनी हल्दी नहीं वापरनी चाहिए, ज्यादा से ज्यादा आधी चमची ठीक है।' इसलिए उसके बाद जो भी पारणे हुए, उसमें जो भी मिठाईयाँ वापरनी हों उन सबको रोटी साथ चूरक उसमें दाल, सब्जी, थोडी सूंठ यह सब बराबर 4-5 मिनीट तक चूरकर बराबर मिश्रीत कर देते हैं और बाद में बस ऐसे एक ही द्रव्य से मानो एकासणा पुरा।

(एफ) जिसमें स्वाद के बिना सीधे-सीधा पोषण मिल जाये तो पहले वही लेकर आते। मेरूधाम, डीकेबीन में दो दिन ऐसा बना कि हम वहाँ थे और स्वामीवात्सल्य में से गोचरी वहोरनी हुई, दोनों जगह घेबर थे, गोचरी तो उनको हमेशा अंदर जाकर ही वहोरनी होती है।

उसके कारण.. आगे बतलाए गये हैं।

इसलिए इन सभी कारणों से वे वहोरने अंदर गये।

दूसरी वस्तुओं के साथ 'घेबर है' ऐसी विनंती हुई। इसलिए दूसरों की भक्ति हेतु 4-5 वहोरे और बाकी स्वयं के लिए चासणी रहित फिक्के खोखे (घेबर) ही वहोरे। शक्कर की उनको आवश्यकता नहीं है। घी-लोट यह दो तो फिके टूकडों में से भी

मिल जाता है ।
उनको 'मूलद्रव्य को पकडना' यह गणित जहाँ दिखा तो बस बात पूरी हो गई ।

(जी) और वह फीके घेबर भी दूधमें नहीं (जो कि उनका दूधभी फिका ही होता है, दूधमें शक्कर नहीं डलवाते ।)
क्योंकि, उसमें घेबर मिक्स करने से स्वाद विचित्र तो नहीं होता पर, उल्टा एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं और इसलिए ही उस समय घेबर, दाल या फिर तेलवाली सब्जी के साथ, या दोनों को, दाल सब्जी को मिश्रीत कर चूरमा तैयार करके 'काम पूरा किया ।'
(एच) एक दिन हरी चटनी थी । उनको कोथमीर की चटणी विगैरह सभी चटणी की बाधा ही है । पर एक बार मांडली में लगभग एक चेतने जितनी चटणी बढ गई । (अतिशय तीखी होने के कारण) तो बाधा होने पर भी मेरी संमति को लेकर उन्होंने पुरा करने हेतु (खपाने हेतु) स्वीकार लिया ।

ये सब्जीके छिलकाका पानी समझकर लेके आये कितना ? चेतना....

बस, बाद में वह हरी चटणी और (पीले खमण की जगह) पीले घेबर दोनों का रगडा करके आराम से उतार लिया । थोडी तीरवास ज्यादा निकली तो पसीना टपक रहा था, बीच-बीच में कटलेस का मावा-भात ऐसा लेते रहकर सीं..... सी....... आवाज निकालते भी वापर लिया । पर जीभ को घेबर से जरा भी पुष्टि नहीं दी ।

(आई) फरसाण बंद है पर अमुक तव मिलते हैं तो पात्रा (पतरवेलीया, पोयी पान) वापरते हैं सही, वह तडके लगायें बिना मिले तो पहले नंबर पर वह वापरते हैं, नहीं तो, सब्जी में एकमेक करके उंधीया बनाकर खा लेते हैं । फरसाण तरीके से स्वाद बिल्कुल नहीं आना चाहिये ।

ऐसे तो कितने ही अलग-अलग नुसखे आजमाकर स्वाद तोडने के लिए सख्त सजा (जागृत) ही रहते हैं । **"मुक्खसाहणहेउस्स साहुदेहस्स धारणा"** इस बात को बराबर में पकडकर सावधानी रखते ।

उनके पारणे ऐसे होते हैं । हाँ ! विशेष तरीके से गिनो तो उनको देशी मिठाईयाँ ही चलती है.. वह जो मिले, तो लेते, क्योंकि शरीर को शक्तिदायक है । इसलिए आगे ढाई महीने उपर आयंबिल करने हो तो टेका रहे ।

* * * * *

(8) उनको कभी रोटी-सब्जी या दाल-भात.. इस तरह मिश्रीत करके वापरते तो कभी देखा हो ऐसा मुझे याद नहीं है..

रोटी जाये चूरने में, हल्दी मिठाई भी साथ में..

सब्जी जाये अकेली अथवा मिठाई के साथ..

चावल के साथ सब्जी का तेल..

और दाल, अंतिम संलेखना में (संलेखना - पात्रा चिकास (घी रहित करना) दूधभी लेते हैं, तो वह भी हमेशा के लिए फिका ही.. शरीर में शक्कर की जरूरत तो नहीं है ना ! और समझो कि, शक्कर लेनी भी हो तो दूधअलग शक्कर अलग.. यह दोनों मिश्रीत करके आसक्ति का पोषण तो कभी नहीं करते !

शरीर के साथ काम लेना.. उसका पोषण करना पडे, तो करते हैं सही..

परंतु, साथ में...... उनकी जीभ को कंट्रोल में रखने के उपाय भी अपनाते रहते हैं।

(9) किसी को दाल में लाल-हरी मिर्ची आ गई हों और अगर उनको ना चले ऐसा हो, तो मिर्ची वि. वे ध्यान में रखकर माँग लेते हैं । जितने भी हों.. चाहे जितने तीखे हों.. तो भी कोई परवाह नहीं..

'शरीर को तालीम देने के लिए, ऐसा खाते-खाते धीरे धीरे होजरी उसका प्रतिकार करना बंद कर देती है..'

ऐसा करके ऐसी मिर्ची कोकम.. विगैरह के साथ, मिठाई उतार देते हैं दोनों काम हो जाता है ना ।

तीखा भी नहीं लगता और मीठा भी नहीं लगे - यह हुई 'वंचना ।' इससे जीभ को भी कमिशन मिलता अटके..

इन्होंने सभी को ऑफर दी ही है कि किसी को भी मिर्ची, कोकम-कडीपता जो भी ना चले वैसा हो तो खुशी से, निःसंकोच, मुझे दे देना.. मुझे कोई तकलीफ नहीं होती ।

उपर से विनंती करते हैं कि - जूठा करने से पहले देखकर निकाल लेना जिससे मैं ले सकूँ.. परठना ना पडे ।

और इस तरह 20-25 मिर्ची भी वापरने का अभी तक का रेकोर्ड है ऐसी वस्तुओं से.. जो भी पित्त-गरमी विगैरह प्रकोप की संभावना है । वह भी इनकी सद्भावना के सामने हार जाती है ।

* * * * *

(10) गोचरी के समय सब्जी जिस पात्रें में लाई हो उस सब्जी के पात्रे में सब्जी

निकालते-निकालते लास्ट में थोडी सब्जी बची हो, उसमें नीचे बहुत जमा हुआ तेल बचा हो, तो वह लेने में भी सबसे आगे...

उनको फिक्स है कि - 'पारणे होते हैं तब सब्जी का पात्रा तो धोने के लिए खुद ही रखते हैं । मांडली में सभी की भक्ति करने के बाद भी जो अंतिम बचा हो वह सब्जी स्वयं के लिए रख देते हैं ।'

गोचरी निकालनेवाले-परोसनेवाले दूसरे हो तो उनको भी कह देते हैं - ''लास्ट में जो बचेगा वह मुझे चलेगा..'' कोई भी सब्जी नहीं चलती ऐसा नहीं है । और सामने से माँगकर दूसरा भी सब्जी का पात्रा हो तो ले लेते हैं ।

- तेल-मसाला सब अकेले वापर लेते हैं.. इसलिए,
- सभी सब्जी में से नीचे उतरा हुआ..
- सभी घरों की शेष रूप इकट्ठा हुआ..

और कभी जो स्वामीवात्सल्य के रसोडे से गोचरी आई हो तो-तो फिर तो पूछने का काम ही नहीं.. मानो के भाव में आया हुआ..

जितना भी तेल हो वह सब वापरने का लाभ ले लेते हैं ।

बहुत्र से आंबिल के बाद (पारणे के दिन) पहला एकासना हो तो उसमें भी ऐसा पराक्रम करते थे कि वह उनके लिए रूटीन हो गया हो वैसा ही था.

हा ! कोई उनके जैसे ही महात्मा, ऐसे तेल विगैरह प्रतिकूल पडे वैसा-सामने से तैयारी बताकर लेनेवाले मिल जाये तो संविभाग भी करते हैं - ऐसा तीन/चार बार बना है ।

पर फिर भी जरूरी मान सके ऐसी भी कोई भी देह की देखरेख नहीं ।

हम सभी को ऐसा हो कि 'इससे कुछ रीएक्शन तो नहीं आयेगा ना ।'

पर 'नहीं'∴

इस विषय में तो महेसाणा वाले डॉ. संजयभाई की परमीशन उन्होंने ले ली है । उनके कहने के अनुसार.. ''इतने प्रमाण में मसालावाला भी तेल शरीर में एक साथ में जाये तो भी कोई नुकसान नहीं है ।''

भले, आपको इतने आयंबिल हुए हों,

पर, पारणे में थोडे ही दिन वापरने के होने से पर्याप्त प्रमाण में लेने में आये तो कोई दिक्कत नहीं है । रोज सब्जी में तेल अधिक आ जाये तो भी दिक्कत नहीं है । ज्यादा से ज्यादा कितना आयेगा ? इससे कुछ शरीर बिगड नहीं जाता । इसलिए

घबराने की जरूरत नहीं है ।''

हा ! इसलिए मैं यहाँ कह सकता हूँ कि - 'भावतु हतु अने वैद्य कह्युं...' (गुज. कहावत)

इसलिए ही उन्होंने तब से निश्चित कर लिया है - 'जभी भी पारणे चल रहे हो तब रोज ऐसी सब्जीवाला पात्रा तो मुझे ही लेना है.. यह लाभ कभी भी जाना नहीं चाहिए ।'

✻ ✻ ✻ ✻ ✻

(11) एक दिन.. उनका उपवास । पारणे में पाँच टोक्सी (-कटोरी जितना माप का पात्र) जितना संखडी (बडे रसोडे का) तेल से भरपूर सब्जी बढी, लेनेवाला कोई नहीं और परठने में विराधना की संभावना । उनको पूछा - ''चलेगा ?'' एक ही क्षण में 'हा' कह दिया, खाली पाँच टोक्सी (एकदम प्रतिकूल) सब्जी आराम से वापरकर फटाफट खडे हो गए ।

✻ ✻ ✻ ✻ ✻

(12) राजकोट जाते वक्त विरमगाम के बाद का पहला स्टोप विट्ठलगढ में तली हुई, पापडी बच गयी । हम 12 साधु । दूसरे म.सा. को अनुकूलता नहीं थी । उनको उसी दिन ओली का पारना था उसमें भी एकासना साढे बारह बजे करने बैठे..... उस समय दूसरा विकल्प नहीं होने से मैंने उनको खपाने के लिए दी । (उन्हें पूरी जिंदगी के लिए सभी प्रकार की तली हुयी चीजें बंद थी ।)

उन्होंने सब पापडी तो खपाने के लिए ले ली, परंतु उसमें पानी डाल दिया, उसमें पापडी को मसल दिया, थोडी देर में वह गिला चने का आटा बन गया मुनि वह पापडी का गिला आटा.. प्रवाही के जैसे उसे पी गए ।

कारण ?

कारण यहीं कि 'पापडी का नियम है, पापडी का आस्वाद लेना नहीं है ।' अब खपाने के लिए लेना ही है, तो उसका स्वाद बिगाडकर खपाने में आएँ तो पापडी को वापरते वक्त आसक्ति न हो.. कर्मबंधभी न हो ।

✻ ✻ ✻ ✻ ✻

(13) हैम वि.का यह भी एक नियम निश्चित है..

'खपाना - पूरा करना हो तो..'

इस रीति से मांडली-भक्ति का लाभ मिलता हो..

.. तो उसमें कभी भी **शक्तिगोपन** नहीं करना..

हमेशा **शक्तिवर्धन** के कदम तक आगे बढना, भावोल्लास के साथ प्रयत्न करना ही

.. और उसमें कभी भी उल्टा नही पडा ।

बल्कि दो-तीन प्रसंग तो उनके खुद के ऐसे बने कि.. उनके शब्दों में ही कहूँ तो

मेरी आहारसंज्ञा के कारण गोचरी जितनी लानी थी उससे ज्यादा आ गयी और वापरनी पडी.. ऐसा दो-तीन दिन से चल रहा था । और उसमें एक दिन.. पुराने अनुभव के अनुसार से.. नक्की ही था कि शाम के बाद मुझे हैरान होना पडेगा..

और उसी समय मांडली में मदद करने का अवसर आया

और हर समय मैंने यथाशक्ति पूरी सहाय (मदद) की है..

अरे । एक बार तो नजदीक के दूसरे उपाश्रय में बिराजमान स्व-समुदाय के ही एक आचार्य भगवंतश्री ने वहाँ से 4-5 चीजे बच गयी थी लेकर आएँ.. आप मदद करोगे उसी इच्छा से गुरू म. ने भेजा है ।

और ऐसी परिस्थिति में 'हा'-'ना', 'ना', 'हा' 'ना' करके विचार करने के बाद भी आधा पात्र के जितना.. दो भाग में लिया.. तो भी पीछे से कुछ भी तकलीफ जैसा नहीं !

ऐसा हर समय प्राय: होता ही था ।

ऐसी खडतल श्रद्धा और नक्कर साधमक वात्सल्य की भावना हो फिर पूछने का ही क्या ?

(जो कि कभी किसी को लंबे समय के बाद आरोग्य के उपर असर भी हो सकती है.. इसलिए जिसे गुरू भगवंत कहे उसे ही खपाने के लिए लेना । पर संमति हो तब तो अवश्य लेना ही ।)

* * * * *

(14) उनका वापरने का ऐसा अनियमित खाता हमेशा का.. फिर भी कोई भी दवा-औषधकुछ भी नहीं लेना.. त्रिफला जैसा भी नहीं ।

आयंबिल में गैस (वायु) ना हो जाये, खुराक सरलता से पच जाये सिर्फ उसके लिए गोचरी वापरते समय ही सूंठ, नमक की फाकी ले लेते हैं । (सात वर्ष पहले उन्होंने उनके परदादा गुरू की निश्रा में जोग किये थे । तब पूज्य आचार्य भगवंत श्री ने उनको यह औषधलेने को कहा था बस ! तब से यह पकडकर रखा है । वडीलों के प्रति श्रद्धा, बहुमान भाव की धारा ही उनको ऐसी गोचरी वापरने पर भी निवघ्नता से इतने

सब आयंबिल की साधना में आगे बढा रही है ।)

वैसे, आयंबिल में इनकी मुख्य औषधसूंठ और बलवण..

आयंबिल का मुख्य खुराक (1) भात (चावल), (2) रोटी (बिना मोण की), (और वह नहीं मिलती हो तो) (3) खाखरा (मोण रहित वाले) ही (4) चना (बिना हल्दी के)

जो मिले वह निर्दोष पानी में, ओसामण में । कभी दाल में भिगोकर वापर लेते हैं । वह ना हो तो सूखा-सूखा ही वापर लेते हैं ।

यह बात पूर्व लिखी है, फिर भी भूल जानेवाले स्वभाववालों को पुनः याद कराने के लिए लिख रहा हूँ कि इस तरह सैकडों आयंबिल करके भी कोई जी रहे हैं । फरियाद के बिना जी रहे हैं । अरे ! सामने से ऐसे आयंबिलों को अपना रहे हैं, और मस्ती में जी रहे हैं ।

* * * * *

(15) और जब इतने सब आयंबिल के उपर पारणा (ऐकासणा) करे तब तो वापरने के द्रव्यों के त्याग के लिए उनके पास (बाधा) सौगंधों का ढेर है ।

- तला हुआ सभी फरसाण बंद
(चिवडा, चकरी, वेफर, सेब..)
(समोसा, केलावडा, कचोरी, मेंदुवडा.. विगैरह विगैरह..)
- आधा हुआ - बफा हुआ सभी प्रकार का फरसाण बंद
(ढोकला, इडली, मुठीया, खमण, इदडा.. विगैरह-विगैरह)
- मावा की सभी प्रकार की मिठाईयाँ बंद
(पेंडा, बरफी, गुलाबजांबु, धारी, कलाकंद विगैरह सब कुछ)
- बंगाली मिठाईयाँ बंद
(चमचम, रसगुल्ला, राजभोग विगैरह और डेकोरेशनवाली अलग - अलग नाम वाली जितनी बनती है वे सब और रसमलाई जो दूधके साथ होती है वे सभी ।)
- दही विगई मूल से बंद
(दहीवाली सब्जी, कढी, दही के थेपले, दहीवडी, दहीवडा, रायता, मट्ठा, श्री खंड, करबा, शाही करबा विगैरह सब ।)

- बदाम के सिवाय तमाम मेवा बंद ।
- केले के सिवाय तमाम फल बंद

इतना तो मुझे ख्याल है, इसलिए लिख दिया
पीछे से मुनि शीलरक्षितविजयजी ने और लिखकर दिया है ।

- मद्रासी विगैरह सभी फरसाण बंद

(ढोसा, पुडला, शेकला, थेपला उत्तपा विगैरह विगैरह)

- नरम-गरम नाश्ते बंद

(चटपटी, पोहे, पोंगल, साजिया, हांडवा विगैरह)

- फेन्सी नाश्ते बंद

(पानीपुरी, भेलपुरी, बास्केट चाट, सेव पकोडी, विगैरह)

- बेकरी की सभी आइटम बंद..

(नानकटाइ, मीठी बिस्कीट, खारी बिस्कीट, बहुत जगह घर की बनाई भक्ष्य हो वे सभी बंद)

- दूधकी मिठाईयाँ बंद

(दूधपाक, बासुंदी, खीर, रबडी विगैरह)

- सेंके हुए पापड, खींचिया, फ्राइम्स, खाखरा पापड की चुरी विगैरह
- छुंदा, मुरब्बा, गुलकंड, च्यवनप्राश, जीवन, आचार वि.
- सिंग, मकाने, सूका खोपरा वि.
- सभी प्रकार की चटणीयाँ - लाल-हरी-पीली-सफेद
- शरबत, वरीयाली-शक्कर-लींबु-जलजीरा विगैरह के पानी..

ऐसी बहुत सारी वस्तुएँ.. यह सब आजीवन बंद.

संक्षिप्त में साधना का साधन ऐसे शरीर को पोषक बने, ऐसी ही वस्तुओं की छूट, सिर्फ स्वादपोषक ऐसी सभी वस्तुएँ बंद।

जो कि, दाल-ढोकली, दाल-बाटा वगैरह शरीर-पोषक भी है, ऐसा होते हुए भी बंद है । उसका कारण यह है कि - तुवर की दाल और रोटी मिलते ही हैं । तो दाल ढोकली क्यूं लेनी । वह ज्यादा आसक्तिकारक है ।

यह गणित सभी जगह लगाते हैं.. जहाँ जहाँ सादी आइटम से काम चल जाये वहाँ विशेष आइटम बंद..

उदा. दाल-भात (चावल) सब्जी है ही तो फिर पुलाब, सादी खीचडी, उपमा,

जीरा राइस, वघारी हुई खीचडी ऐसी सभी दाल-चावल से बनी वस्तुएँ बंद ।

ऐसे, मावा की वस्तुएँ भी ठोस कहलाती है । फिर भी उसका ही कार्य दूध, घी लेने से हो जाये तो नाहक की आसक्ति का निमित्त क्यूं खडा करना ?

और मावे को मिठाई में वासी का दोष भी होता है । अधिकतर गुलाबजांबु विगैरह ताजा बनाने में आये हों तो भी मावा तो लगभग वासी ही होता है । इसलिए भी त्याग करना तो जरूरी ही है ।

इसलिए इन्होंने तो यह सब आजीवन ही बंद कर दिया है !!

सात दिन के पारणे में भी इन सभी बाबतों में कोई भी छूटछाट नहीं (इस वक्त चैत्र महीने में ही उनके गुरूदेवश्री मिले थे और उन्होंने स्पष्ट आदेश दिया कि उनको 15 दिन के पारणे करने हैं।

स्पष्ट ख्याल आ जाता है कि जो-जो वस्तु शरीर के लिए उपयोगी नहीं है या अल्पोपयोगी है, वे-वे तमाम वस्तु का उन्होंने त्याग कर दिया है ।

कदाचित् उनके 'त्याग' का लीस्ट बनाने से अच्छा है कितनी छूट है उसका लीस्ट आसानी से बन जाये ऐसा है । सिर्फ 15 से 20 द्रव्य खींच-खींच कर हो तो भी बहुत है ।

* * * * *

(16) आयंबिल हो या एकासणा, 'जीभ को जीवन मिलना नहीं चाहिए ।' यह उनका मंत्र है ।

इसलिए फिर..

भक्ष्याभक्ष्य की दृष्टि से चले ऐसा..

और व्रत-पच्चक्खाण की मर्यादा में कल्पे ऐसा..

42 दोष और पश्चात्कर्म विगैरह दूसरे भी गोचरी के दोषों से रहित ऐसा जो मिले वह सब ही, इनको चलता है ।

ऐसा जो एक द्रव्य भी व्यवस्थित प्रमाण में मिल जाये तो उनको फिर साथ में वापरने हेतु दूसरे कोई भी द्रव्य की अपेक्षा नहीं रहती ।

विहार के आयंबिल तो सिर्फ रोटी या रोटला (बाजरी की रोटी) से होते हैं.. वह तो होते ही हैं । पर उसके सिवाय भी कितनी बार..

'गोचरी के लिए कम घूमना पडे ।'

'दूसरी बार गोचरी वहोरने के लिए जाना ना पडे'

रोज से कुछ नया मिल जाये तो शरीर में उसका बैलेन्स हो जाये ।

'बाकी सभी को' एकासणादि होने से स्वामी वात्सल्य में से गोचरी हो जाये ऐसा हो, और उनके अकेले के लिए दूर घरों में गोचरी जाना पडे वैसा हो अथवा दूसरों को भेजना पडे वैसा हो ।

ऐसा बहुत कारणों से ऐसा होता है कि वे, कम से कम समय से जो भी मिल जाये उससे चला लेते हैं..

तो सिर्फ सेके हुए चने भी चलते हैं, और सिर्फ खाखरे भी चलते हैं । सिर्फ चावल भी पर्याप्त हो जाते हैं या सिर्फ दाल हों तो भी इनके लिए पर्याप्त हैं !

कितनी बार सिर्फ मूँग से भी आयंबिल किया है । और कभी सिर्फ बफे हुए चने, वटाणे (सूखे मटर) या तुवर से भी आयंबिल कर लिया है । जो मिले वह लाकर कोई भी झंझट के बिना प्रसन्नता के साथ आयंबिल पूरा निर्दोष कर देते हैं शर्त इतनी ही कि - 'निर्दोष' चाहिए -

निर्दोष यानि 100 प्रतिशत 'निर्दोष'.. उसमें कोई बांधछोड नहीं ।

रसोई में कुछ भी ना मिले तो ऐसा बने तो कच्चे पोहे अथवा कच्चे पापड को पानी में भिगोकर भी.. ऐसे एक द्रव्य से भी उनका आयंबिल सुखपूर्वक हो सकता है ।

यह सब सिर्फ लिखने के खातिर नहीं लिख रहा हूँ । पर मेरी नजरो को अनेक बार ऐसा सब दिखने को मिला है, उसके कारण ही हुए अनुमोदना के भावों को इस बहाने से यहाँ प्रगट कर रहा हूँ । यह कोई काल्पनिक नवलिका नहीं समझना, परंतु कलिकाल में हाजराहजूर ऐसे एक महात्मा की सत्य जीवन कथा है । और ऐसा भी नहीं मानते कि, 'उनका शरीर तो अलग ही मिट्टी का बना हुआ है अथवा तो विशिष्ट नामकर्म विगैरह के उदय से उनको ही ये हो सकता है !! नहीं, ऐसा बोलने के बजाय ऐसा कहना चाहिए कि उन्होंने इस तरह शरीर को तालीम दी है, परंतु सँभालने के, अनुचित सहलाने का कार्य नहीं किया है ।' यह एक हकीकत है ।

* * * * *

निर्दोष उपधिके धारक

(1) उनके दो कपडे-चोलपट्टा-काम्बली-आसन उत्तरपट्टा-मुहपत्ति.. विगैरह जो भी कपडे की उपधिहै.. वे सभी के सभी उपकरण निर्दोष । इतने वर्षों से तो स्वगुरूजनों की उपयोग में ली हुई उपधिही लेते । वह सब निर्दोषता पूर्वक लाई हुई, वडीलों ने वापरी हो वही वापरते हैं ।

पर यहाँ रहे हैं तब निर्दोष उपधिका ही उपयोग करनेवाले कोई भी वडील जन कभी भी मिल जाये तब उनकी उपयोग की हुई वस्तुओं में से खुद को जो भी खप हो उसके अनुसार ले लेते हैं ।

उदा. अभी एकदम ठस बनी हुई - वजनदार काम्बली है । वह पूज्य आचार्य श्री जगच्चंद्रसूरिजी महाराज साहेब की ठंडी में वापरने की काम्बली जिसे वर्षों से वापर रहे थे और दो वर्ष पहले ही चैत्री ओली के वक्त उनको उपयोग में नहीं लेनी थी (उसे निकाल रहे थे) वह इन्होंने ली है । तभी ही इस महात्मा को आवश्यकता थी तो उन्होंने रख ली थी और तभी 12 महीने बस यह एक ही काम्बली चल रही है ।

- आसन तरीके से भी उस ही पूज्य आचार्य भगवंत श्री के (निकालने) आसन में से एक भाग लिया है, जो 10 महीने से चल रहा है, जीर्ण होते अभी 2-3 साल तो लग ही जायेंगे । जीर्ण (पुराना) होने के बाद ही नये की बात ।

- ओघारिया के लिए गत 'चातुर्मास' में एक घर से एक कटासणा लेकर आये थे । उसमें से जितना खप था उतना टुकडा लेकर उपयोग कर रहे हैं ।

- संथारा.. दीक्षा के वक्त था वही अब तक चल रहा है । हर वर्ष एक बार उसका काप निकालते-निकालते तो अभी बराबर 'कुक्कुडी पाय' हों, उस ही माप का हो गया है और इस तरह ही वे संथारा करते हैं ।

- कपडा वगैरह के लिए धोती का उपयोग हो जाता है.. वह भी याचना करने जाये तब जाडा-पातला जो पहली बार में मिल जाये वह ले लेना । पतले के लिए अधिक नहीं घूमना । इसलिए ही अभी जो उनका कपडा है वह सामान्य तरीके से चोलपट्टा होता है ऐसा उससे भी ज्यादा जाडा..

- चोलपट्टा और उत्तरपट्टा, श्रावकों के घर उपधान की प्रभावना में मिले हो वह गवेषणा करके लाते हैं और उसमें भी प्रथम प्राप्त हों वह ले लेना । हा ! बहुत पतला हो तो नहीं लेना पर ऐसा लगभग बनता नहीं है और ऐसा ही उत्तरपट्टा बाद में उनको चोलपट्टा, उत्तरपट्टा के लिए चलता है ।

- ऐसे जाडे चोलपट्टे वापरने से, काप नहीं निकालने के कारण विहार में घुटने के पीछे का भाग छिल जाता है । लाल होकर जलता हैं, जलन होती है.. विगैरह बहुत तकलीफें होती हैं.. पर वह सब ही सहन करना उनके लिए एक रूटीन (क्रमचर्या) जैसा ही हो गया है.. उसे ध्यान में लेने की फुरसत ही नहीं है । हमारे जैसे पूछे तो कह देते हाँ ! ऐसा होता तो है.. पर बाद में जहाँ पर भी स्थिरता होती है तब 2-4 दिन में ठीक हो जायेगा !'

और उसमें भी ऐसे कपडे-चोलपट्टे विगैरह में कोई ऋतुपरिवर्तन की असर ही नहीं, जो चल रहे हों वे परठने जैसे अति-जीर्ण ना हो वहाँ तक सभी ही मौसम में वही वापरते रहते हैं । (अभी-गरमी में.. वैशाख वद में दूसरे समुदाय के एक बडे पर्यायवाले साध्वीजी भगवंत वंदन करने आये थे । उन्होंने इनके पहने हुए कपडे को देखकर तुरंत कहा - ''कपडा-चोलपट्टा कितने जाडे हैं'' (मतलब कि ऐसे किस तरह चल सकते हैं ?)

* * * * *

(2) झोली, पल्ला, रजस्त्राण, पात्रस्थापन या ऐसे कोई भी दूसरे ओधउपधिमें आते जरूरी उपकरण के हेतु कपडा घरों में से याचना करके लाते हैं.. कभी गोचरी वहोरने जाये तभी भी मिल जाते हैं, तो कभी उस समय (टाईम) ज्यादा लग रहा है ऐसा कोई कारण हो तो विशेष रुप में आकर गवेषणा के लिए भी जाकर ले आते हैं ।

* * * * *

(3) लूणे (पात्रा पोछने का कपडा) के लिए भी अमुक कपडे का बचा भाग हों तो उसमें से ही काम हो जाता है और माथाबंधन तो खुद के ही उपयोग में लिए हुए कपडों को जब परठना हो (जीर्ण हो गए होने से) तब अमुक भाग निकाल देते हैं और अति जीर्ण ना हो वहाँ तक चलाते हैं ।

* * * * *

(4) दंडासण की दांडी तो दीक्षा के समय की ही है । कोई उपाश्रय में से श्रावकों की एक्स्ट्रा पडी हुई उनके गुरूदेवश्री ने लेकर रखी होगी वही । उसके बाद जो दसीयाँ

है वह भी घरों में से जो उपयोग नहीं करते वैसी याचना करके लाई है। उसमें भी क्रीत-अभ्याहृ विगैरह दोष न लगे वैसी सावधानी।

* * * * *

(5) हम अमदावादी घडा वापरते हैं, पुराने (रीढे) हो जाते हैं तो नये लेते हैं। पर वे घडे प्रायः आधाकर्मी या मिश्रदोष वाले होते हैं। स्पेश्यल साधु-साध्वी के लिए बनते हैं, और वे घडे अग्नि में पकाने में आते हैं, इसलिए अपने निमित्त से षट्काय की घोर विराधना होती है।

हैमविजयजी तो कोई श्रावक के घर से ही वहोर के लाते हैं, वह भी ऐसा आकार का, ऐसा प्रकार का होता है कि साधु-साध्वीजी उसे नहीं वापरते वे सिर्फ संसारियों के लिए ही बनते हैं। तद्दन निर्दोष! वह हैमविजयजी वहोर कर लाते हैं।

उनका ऐसा एक जाडा, बडा घडा लगभग डेढ वर्ष के उपर चला। भीनमाल अमदावाद आते रास्ते में फुट गया। उसके बाद अभी साबरमती संघ में किसी के घर से वे ऐसा ही विचित्र (!) फिर भी दिखने में खराब न लगे वैसा घडा लेकर आये हैं। उसको एक छेद है, वह पूरकर (कोई द्रव्य से) महिनों-वर्षों तक वापरेंगे ऐसा मुझे तो लग रहा है।

* * * * *

(6) उस महात्मा के पास जो प्याला, दोरी, विहार का जाडा घडा (अमदावादी घडे से भी प्रायः अधिक वजन वाला, चूना की डिब्बी, (लूणे निकालने के लिए) सर्फ की डिब्बी विगैरह साथ है। वे सब ही कहाँ कहाँ से याचना करके लाये हुए हैं.. कोई 2-3 महीने पहले तो कोई चीज 2-3 वर्षों पहिले.. जब जरूरत पडी.. तब तब ली है। और पूरा कस ना निकले वहाँ तक चलाना है। प्याला तो इतना बडा है कि शायद दूसरे कोई महात्मा के पास ऐसा बडा प्याला मिले। यह सवाल है।

* * * * *

(7) लूणे के लिए जितना साबू-सर्फ चाहिए उतना शेषकाल में थोडा-थोडा घरों में से याचना करके लाते हैं और चातुर्मास के लिए पूरा स्टोक चार पाँच दिन अलग-अलग घरों में से लाते हैं।

* * * * *

(8) आधाकर्मी दोषवाला अमदावादी घडा खुद के पास विहारादि के लिए तो नहीं ही रखना पर स्थिरता में भी उपाश्रय में रहे ऐसे अमदावादी घडे (पुराने होने के बाद भी नहीं) नहीं वापरते। उसमें तांबा का भी नहीं ही!

* * * * *

(9) पेन पेन्सिल, रबर, जब जब चाहिए तब तब सिर्फ एक ही नग घरों में से लेकर आते हैं । उसमें भी पेन्सिल के ऊपर अक्षरवाला भाग निकल गया हों वही पेन्सिल लाते हैं और रब्बर भी अक्षर निकल गये हों वैसा, इसलिए दोनों एकदम छोटे ही रखने । अभी उनके पास 2.5 इंच की पेन्सील है, जिससे लिखते वक्त वायुकाय की विराधना भी कम होती है । (लिखते वक्त पेन-पेन्सिल हिले तो सही ही, इससे वायुकाय की विराधना से बचने के लिए छोटी से छोटी पेन्सिल का उपयोग करते हैं । चातुर्मास के सिवाय कभी दो पेन तो रखते ही नहीं हैं, सिर्फ एक ही पेन रखते हैं ।

* * * * *

(10) सुई-धागा, नेल कटर, कैंची, ब्लेड, कपडे-कागज-प्लास्टिक की टेप ऐसी वस्तुएँ भी कभी भी साथ में नहीं रखते । ग्रुप के कोई महात्माओं के पास हो तो उसका भी उपयोग नहीं करना । क्योंकि संनिधिदोष लगता है । इसलिए शेषकाल में जब जरूरत पडती है तब याचना करके लाते हैं और उपयोग करके पुनः वापस देकर आते हैं और चातुर्मास में ऐसा कोई घर मिल जाये, जहाँ ऐसी वस्तुएँ एक से अधिक हों, वैसे घर में से चार महीने के लिए याचना करके लाते हैं और पुनः चार महीने के पश्चात् देकर आते हैं । जिससे चालु चातुर्मास में नया नहीं लेने से बीच-बीच में कार्य आने से अटकता नहीं है और साथ में वस्तु की मालिकी भी नहीं होती ।

* * * * *

(11) उपाश्रय में लिखने-पढने के लिए साधु साध्वीजीओं के लिए टेबल डेस्क बनाये हुए होते हैं । परंतु वे भी सभी लगभग स्पेश्यल बने हुए होने से उसमें आधाकर्मी-अभ्याहत विगैरह बहुत दोष लगते हैं । इसलिए हैमविजयजी उपाश्रय में साधु-साध्वीजी के लिए बनाये हुए टेबलों का उपयोग नहीं करते ।

लिखने-पढने में अनुकूलता रहे इसलिए हम कदाचित् ऐसे टेबलों को बनाते भी होंगे, पर मुंबई विगैरह शहरों में स्पेश्यल बनते फोल्डींग टेबल, हम स्पेश्यल मंगवाते भी होंगे । मुंबईवाले, खेतानी परिवार आदि भाविक लोग ट्रक में यह सब भरकर 500 कि.मी. मुसाफरी करके स्पेश्यल वहोराने के लिए लाये हुए.. रास्ते में पंचेन्द्रिय जीवों की अमाप हिंसा होने के बाद भी हम उन चीजों का उपयोग भी करते होंगे ।

पर यह महात्मा की बात ही अनेरी,

उपाश्रय में जो वस्तु ऐसी होती है कि जो श्रावकों के लिए ही बनाई हुई होती है,

उसका लिखने के लिए उपयोग करते हैं ।

उदा. नीचे आयंबिल खाते में पाटले होते हैं, व्याख्यान के वक्त गहुँली करने के पाटले होते हैं, प्लास्टिक के तैयार मिलते टेबल कोई कारण से लाये हों, संस्कृत पाठशाला के विद्याथयों को पढने के लिए स्पेश्यल डेस्क टेबल तपोवन में बनाने में आये हों, तो ऐसे टेबलों का ही उपयोग कर लेते हैं ।

आज - अभी, यह लिखते वक्त मैं नजर के सामने देख रहा हूँ कि इस संघ में सुंदर टेबल ढेर सारे पडे हैं । फिर भी एक प्लास्टिक का छोटा टेबल लेकर उसके ऊपर एकासणा करने विगैरह के काम आता पाटला उसके ऊपर रखके खुद की आलोचना लिख रहे हैं । यह प्लास्टीक टेबल, पाटला दोनों घरों में से चार महीने के लिए माँगकर लाये हैं ।

हमको टेबल-पाटों का उपयोग करते वक्त कभी विचार आया है सही ? कि यह अपने संयमजीवन में बडा दोष है ?

* * * * *

(12) ऐसे, संथारा के लिए भी स्थायी व्याख्यान की पाट हो, और वह सेट हो जाये तो चातुर्मास में वही वापरते हैं.. उस वक्त दूसरी स्पेश्यल बनाई हुई पाटों का कोई भी रीत से उपयोग करते ही नहीं हैं !

निष्परिग्रही

(1) शास्त्र में बताये हुए ओधउपधिके 14 उपकरण, परंपरागत आचीर्ण आसन, संथारा-उत्तरपट्टा, माथाबंधन, दंडासन, एक एक्स्ट्रा पात्रा (कुल तीन पात्रें, और एक (अथवा बढकर दो) पात्री.. उसके सिवाय एक भी वस्त्र-पात्रादि उपकरण कभी भी शेषकाल में अतिरिक्त नहीं रखते हैं ।

मुहपत्ति भी जरूरत पडे तब घरों में से मिल जाती है.... ऐसा करके एक से ही चलाते हैं । अधिक नहीं रखते । काप निकालने के लिए, काप निकालने के बाद पास में ही खुल्ली करके रख देते हैं । दो-तीन घंटों में सूख जाती है... फिर क्या चाहिए ।

चातुर्मास में जरूर पडे उसका अंदाज निकालकर एक-एक कपडा-चोल पट्टा वहोर के आते हैं और वह भी उपयोग में ले ले तो कार्य पूरा हो जाये, बाद में आषाढ महीने तक 'वन-वन पीस' उपधिवाले हो जाते हैं ।

* * * * *

(2) काम्बली भी जब जो मिली हों वह 12 मास चलाना । अभी जाडी काम्बली है, तो ठंडी की वह काम्बली गरमी और चातुर्मास में भी वही वापरनी। मौसम के अनुसार 2-3 काम्बली अलग-अलग नहीं ही रखते और ठंडी में भी एक ही काम्बली.. दूसरी कोई काम्बली या कपडा या कम्बल विगैरह एक्स्ट्रा उपधिनहीं वापरते ।

* * * * *

(3) घडियाल, देव-गुरु के फोटो, जाप के पट-यन्त्र, नेल कटर विगैरह संचा ऐसी कोई भी वस्तु नहीं रखते ।

- उपाश्रय के घडियाल के सेल के लिए कभी भी नहीं कहना.. शेषकाल में विहार के दौरान कितनी ही जगह में घडी ही नहीं होती अथवा हों तो चालू नहीं होती.. ऐसा भी बनता है, तब दिन में दो-तीन बार आसपास पूछकर आते हैं.. रात को भी कुछ ना कुछ रास्ता निकाल देते हैं ।

- वसति में कोई मनुष्य या तिर्यंच तो दूर, पर सामान्य प्राकृतिक चित्र अथवा

सिर्फ डिजाईन जैसा भी हो तो पूरी वसति अकल्प्य-वर्ज्य तरीके शास्त्रों में कही है । इसलिए स्वगुरूजनों के भी फोटो या तीर्थाधिराज विगैरह के भी फोटो कभी भी रखते नहीं हैं ।

बहुत अनर्थों की परंपरा + परिग्रह में अति चारादि रूप होने से कभी ऐसा कुछ भी नहीं रखते हैं ।

- जाप का पट वगैरह भी आवश्यक रूप नहीं बताया !

और, गीतार्थता प्राप्त ना हो वहाँ तक सिर्फ और सिर्फ स्वाध्याय योग की ही प्रधानता रखनेवाले अलग-अलग मिलते शास्त्रीय विधानों को उन्होंने अपनाये हैं । इसलिए सिर्फ 108 नवकार का जाप ही करना होता है । और वह तो अंगुली पर भी हो जाता है इसलिए ऐसे भी कोई परिग्रह की बिलकुल तैयारी नहीं ।

- दूसरी कोई भी चीज की अस्थायी जरूरत आये तब गृहस्थ की मालिकी ही रखके याचना करके लाकर, तुरंत वापस दे देते हैं । इस तरह स्वनिर्वाह व्रत निर्वाह दोनों को यथायोग्य संभाल लेते हैं ।

* * * * *

(4) चश्मा भी एक भी एक्स्ट्रा नहीं, जो चले हैं, वह बीच में एकबार काच बदलने के लिए दिये थे, तो एक - दो दिन दूसरों के चश्मा से चलाया । वह दूसरे महात्मा भी उनके जैसे ही खपी - अनुकूल थे, उनको नंबर कम थे । इसलिए दोनों ने कम नजर से दो दिन स्वाध्याय-पाठ लेकर पूरे किए ।

एक बार अषाढी दशम के बाद चश्मा ठीक करना पडा । चौदस के पहले मिलनेवाला था । पर कोई श्रावक की कामगीरी में ऐसे तैसे होने से चौदस को शाम तक मिला नहीं । चौदस के बाद तो ले नहीं सकते हैं ना ! तो शाम को ही घरों में जाकर किसी के पुराने उतरे हुए चश्मे उनके ही रेन्ज वाले नंबर के मिल गए और उस पर पूरा चौमासा निकाला ।

उसके पहले भी एक बार फ्रेम टूट जाने से नये चश्मे लेने थे, उन घरों में पहले सीधे नंबरवाले काच की तलाश की पर वह नहीं मिलने से फ्रेम पुरानी लेकर उसमें काच जडा दिये । इस तरह जयणा की ।

* * * * *

(5) हम सभी चश्मे के नंबर चेक कराने गये थे, चश्मे की दुकान में ही, उन्होंने कम्प्यूटर में स्वयं के नंबर चेक नहीं कराये, पर वहाँ के भाई ही जो काच में देखकर

चेक करे, वह कराया ।

चश्मेवाले भाई जैन, भक्तिभाव वाले, उन्होंने इनकी फ्रेम देखकर कहा 'नये काच नयी फ्रेम में डालकर भेजता हूँ ।'

हैमविजयजी ने कहा, 'काच तो नये डालने ही पडेंगे, नंबर बढे हैं इसलिए पर फ्रेम तो यही रखनी है ।'

'पर महाराज साहेब ! यह फ्रेम तो कितनी पुरानी है (यानि एकदम पुरानी फेशनवाली है ।)! और यह देखो तो जरा, एक तरफ से टूट गई है फिर उसे चिपकाया है । (दोरी और ऐरलडाईट दोनों मिक्स करके एक तरफ से फ्रेम की डंडी को चिपकाया था ।) अब ऐसी फ्रेम चलती होगी क्या, और इसकी डंडी भी छोटी है । आपके कान तक बडी मुश्किल से पहुँचती है ।'

उसके बाद दोनों की आधे घंटे तक चर्चा हुई, मैं तो जो कि वहाँ से तुरंत ही निकल गया । क्योंकि, अनुभवों के बाद मुझे ख्याल आ गया कि (?) 'यह झगडा जल्दी पूरा नहीं होगा ।'

दूसरे दिन वह चश्मेवाले भाई जो हमारे साथ आये थे वे मेरे पास आये, ''महाराज साहेब ! यह साधु तो गजब के हैं, क्या उनका वैराग्य और क्या उनकी समझ ! फ्रेम नहीं बदलने दिये तो नहीं ही बदलने दिये ! हमको हरा दिया । धन्यवाद है उनको !''

तीन वर्ष पूर्व चौमासी चौदस केशवनगर बत्रीशी होल में करने के लिए हम सभी अमदावाद तपोवन से निकले । तब उन्होंने साबरमती में एक घर में जाकर एक गृहस्थ की पुरानी फ्रेम वहोरी थी (तब उनकी फ्रेम टूट गई थी, इसलिए) पर एक भी नयी फ्रेम लेने की इनकी तैयारी नहीं.

आज वही फ्रेम बदलने के लिए नवकार वासणा संघ में झगडा (?) हुआ था । पर हारे वे दूसरे, हैमविजयजी नहीं ।

* * * * *

(6) अभ्यास के लिए पुस्तकों के रूप में एक भी प्रत पुस्तक खुद की मालिकी की नहीं... जब भी जिस ग्रन्थ का अध्ययन करना हो तभी नजदीक के या स्थानिक गाँव के ज्ञानभंडार में ही मिल जाये तो सबसे पहले उस विकल्प से कार्य पूरा करेंगे । अगर नहीं मिले तो बाहरगाँव से ।

उसमें संशोधन, टिप्पणी विगैरह तो उनको ही करना होता है । उनको जो पंक्ति खुली ना हो, जो पदार्थ बैठा ना हो तो एकदम बारीक अक्षर से पोईन्ट करके रखते हैं ।

अशुद्धि जैसा भी बहुत में होता है, वे सभी व्यवस्थित सुधार लेते हैं ।

उसके सिवाय कुछ सुधारने जैसा लगे तो वह भी अंदर कर लेते हैं । इसलिए दूसरे कोई अभ्यासु को भी भविष्य में काम में लगे । और फिर यह संज्ञा वाली पुस्तक प्रत पुनः वहाँ ही वापस करनी । पर उस पुस्तक विगैरह का नंबर खुद के पास एक कागज-नोट में लिखकर रखते हैं । इसलिए भविष्य में उसकी जरूरत पडे तो मानो खुद की ही कोई पुस्तक हो और हम मँगवा सके ऐसे वे नियत स्थान से वही पुस्तक मंगा लेते हैं । इसलिए खोखे का कार्य सिर्फ एक कागज के टुकडे से हो जाता है

वैसे, पुस्तक विगैरह का भार टले और साथ-साथ परिग्रह के पाप का भी भार टले उसका फायदा अलग से !

* * * * *

(7) विहार के लिए मिट्टी का घडा भी एक बार लेने के बाद वहाँ तक उपयोग करते जहाँ तक टूट ना जाये । कहाँ पर भी रखना नहीं या गरमी-ठंडी में अलग-अलग लेने नहीं । दरार पड जाये तो चिपकाकर भी जितना चले उतना चलाना बाद में परठना । उसके उपर सिर्फ एक टोक्सी एक्स्ट्रा रखते हैं पर पीने के लिए अधिक टोक्सी नहीं रखते ।

* * * * *

(8) इसके सिवाय कोई भी सामान विगैरह स्वयं (?) संसारी (पिताजी) के घर पर नहीं.. या कोई भी भक्त के वहाँ भी नहीं (वैसे तो, इनको ऐसे कोई भक्त ही नहीं ! जो भी नोट वगैरह बनाये या तो खुद के साथ अथवा कोई ज्ञानभंडार में रख देते हैं, जिसे उपयोग में आये उसे लेने की छूट - यही सच्ची निर्ग्रन्थता है ना !

* * * * *

(9) चूने के पानी की डिब्बी भी एक्स्ट्रा है... पीछे से घुसी है और,

जिस तरह तरपणी अभी ओघ उपकरण में गिनी जाती है, उस तरह ऐसी डिब्बी भी **ओघ उपकरण** में गिनी जाती है और इसलिए रखनी पडती है । ऐसा तो नहीं है ! इसलिए ऐसी डिब्बी भी उनके पास नहीं है । विहार में सुबह बडी नाति जाना ही ना पडे इस तरह शरीर को सेट कर दिया है ।

शुरूआत के पर्याय में वे रखते भी थे तो भी इतना तो पक्का ही कि सिर्फ और सिर्फ चालु विहार में ही वह उपयोग में लेते वह भी जिस दिन सुबह का विहार हो उसी दिन ! यानि कि, जहाँ तरपणी का विकल्प मिल सकता है वहाँ एक दिन भी भले ना हो

फिर भी उस डिब्बी में पानी रखना ही नहीं कि जिससे उपयोग करने का प्रश्न आये.. सिर्फ सुबह विहार करते समय भरते और वहाँ पहुँचकर तुरंत खाली !

इस तरह ऐसी छोटी सी वस्तु का एक्स्ट्रा उपयोग नहीं करते अथवा तो उपयोग करना ही पडे तो कम से कम किस तरह हो ? उसकी सँभाल रखके ! यही अपवाद का सच्चा लक्षण है । छूट लेनी पडे तो भी लेकर किस तरह जल्दी से जल्दी शॉर्ट में पूरा करके बच सके उसकी सतत सँभाल.. उसका ही लक्ष्य.. उसका ही पुरूषार्थ !

* * * * *

(10) पुस्तक या प्रत में कुछ सूचित करना हो, तो पेन्सिल से एकदम बारीक अक्षरों से ही सूचित करते हैं, जिससे कोई दूसरे अभ्यासु को यह सब ना पढना हो तो साईड में होने से अडचन ना लगे, बहुत गीच-गीच भी न लगे.. और भविष्य में जरूर पडे तो उसे (रब) मिटा भी सकते हैं ।

महव की बात यह है कि किसी के घर से उपयोग में ली हुई, उपर छपे हुए अक्षर निकल गये हों वैसी एकदम छोटी हुई, पूरी पेन्सिल का सिर्फ चौथा भाग बचा हो वैसी पेन्सिल मिले तो उसका ही उपयोग करते हैं ।

वे उसका उपयोग चालू करने के बाद लंबे समय तक चले, उपकरण की सँभाल इतनी सख्त कि वह जब बहुत छोटी होने से पकडने में तकलीफ होने लगे, तब बोलपेन का सफेद ढक्कन, पेन्सिल के पीछे लगा देते हैं, जिससे पकडने में जमे ।

मैंने पूछा, 'यह पेन्सिल तुमने कब शार्प की ?'

जवाब : नहीं जी ! परंतु कोई न कोई साधु भाक्ति भाव से मेरी जानकारी के बिना शार्प कर देते है ।

अभी ही वह पेन्सिल बदली है । नयी वापस ऐसी ही रखी है ।

* * * * *

(11) यह सब बातें की इसलिए अब यह तो समझ ही सकते हैं कि उपधिका पट्टा, गला का पट्टा, ओधा का कवर, दंडासण का कवर यह सब कुछ नहीं, शुरूआत में 1-2 वर्ष ओधा बांधकर विहार में चलते थे । बाद में लगा कि इसमें तो रास्ते में कभी भी प्रमार्जना करने का अवसर आ पडे तो वह नहीं हो सकता.. ..। मंदिर में दर्शन करने जाते हैं वहाँ खमासमणा संडासा के बिना देने पडते हैं । क्रिया करने में भी अकेली मुहपत्ति हाथ में रहती है और पूरा शरीर टाइटम-टाइट होता है तो कैसा लगता है ! प्रमाद का पोषण होता है ! बस, उसके बाद हमेशा के लिए ओधा हाथ में रखकर, बगल में रखकर ही चलते हैं । गोचरी जाते वक्त पसीना बहुत होता है । उसमें

ओधारीया विगैरह गीला हो जाता है तो कुछ असंयम जैसा लगता है । उससे पहले उसके उपर प्लास्टिक चढाकर गोचरी जाते थे । पर वह प्लास्टिक भी खुल्ला चौरस टुकडा ! जिससे उस प्लास्टिक का भी पडिलेहण बराबर हो सकता है । और नीचे दसी भी पूरी खुल्ली ही रहती है.. प्रमार्जने में कही भी अटके नहीं ।

और यह बात भी पूरी कि अपवाद का कार्य आये तब उतने समय तक के लिए ही अपवाद का उपयोग करते । गोचरी जाते वक्त ही उपर प्लास्टिक लगाते और आकर तुरंत ही निकाल देते ।

पर अब तो वह भी नहीं रखते । गोचरी जाते हैं तब थोडे समय के बाद पसीने की फरियाद चालू होती है इसलिए काम्बली के अंदर ओघा लेकर बगल में डाल देते हैं । इस तरह सब संभाल लेते हैं । सभी के पीछे मुख्य लक्ष्य एक ही - 'कम-उपधि' तो पडिलेहण भी कम और थकान भी कम !

साथ-साथ में 'इतने अंश अधिक जिनाज्ञा का पालन..' विगैरह भी बहुत-बहुत लाभ होते हैं ।

* * * * *

(12) विहार का बैग / थैला / पाकिट.. विगैरह नाम से कही जाती एक भी वस्तु नहीं..

जिसे बहुत परचूरण वस्तुएँ रखनी हो उसे खानावाला या बिना खाने का पाकीट चाहिए ना ? उनको तो सिर्फ पुस्तक, पेन ऐसा ही लेना होता है इसलिए सिर्फ एक चोरस कपडे का टुकडा लिया तो पोथी बन जाती है.. उसके उपर एक दोरी बांधदेते हैं । वह भी जोईन्ट नहीं इससे पोथी, दोरी दोनों का पडिलेहण एकदम व्यवस्थित हो सकता है ।

अप्रमत्तयोगी

(1) कोई भी अनुष्ठानादि में जो विधिबताई है वह जानकर उसके बाद हैमविजयजी तुरंत उस विधिका पालन शुरू कर देते हैं ।

- उदा. 'सभी ही उपधिका पडिलेहण उभडक पैर रखकर ही करना चाहिए' ऐसा जब से पता चला तब से उसके अनुसार ही चालू कर दिया ।

- **ओधनिर्युक्ति** में पडिलेहण के दोष पढे... नीचे अडे, फटाफट पूरा करे, एक-एक कोना बराबर ना देखे, कपडे के हरेक भाग को बराबर नहीं देखना अंधेरे में पडिलेहण करना आदि-आदि.. बस, तब से जिन-जिन बातों का ख्याल नहीं था. .. गलत था, वह सुधार ही लेते !

- आसन बिछाकर बैठने की विधिभी उस ग्रंथ में से जानने के बाद तुरंत अपना ली ।

(2) दीक्षा के बाद तीन महीने के अंदर ही स्वयं के गुरूदेवश्री के पास यति **दिनचर्या** का पाठ लेते समय यह जाना कि -

- ऐकासणादि में - 'पोरिसी तक चोविहार और पुरिमड्ढ तक तिविहार' - इस तरह भी पच्चक्खाण प्रतिदिन सुबह ले सकते हैं.. यानि, 'पोरिसी के वक्त पानी वापरने के बाद भी एक प्रहर तक गोचरी नहीं ही वापरनी है ।'

- इस तरह आगे के अधिक काल तक का नियम होने विशेष त्याग का लाभ होता है ।

- बहुतों को इसका ख्याल ना हो ऐसा भी बनता है । इससे यदि ऐसा पच्चक्खाण लेना हो तो उस वक्त पच्चक्खाण के पाठ में जो जोडना हो वह यहाँ बताता हूँ... जिससे किसी को पानी, गोचरी, दोनों के लिए नवकारशी / पोरिसी / साढपोरिसी / पुरिमुड्ढ / अवड्ढ में से कोई भी दोनों का ऐसा अलग-अलग पच्चक्खाण लेना हो तो ले सकते हैं ।

- उदा. बियासणा करना हो तो उसमें भी -

नवकारसी के बाद पानी की छूट और पोरिसी के बाद ही आहार की छूट ऐसा

पच्चक्खाण करना हो तो नवकारसी चोविहार, पोरिसी तिविहार ऐसा पच्चक्खाण लेना। ऐसा ही नवकारसी + साड्ढपोरिसी / पुरिमुड्ढ विगैरह समझ लेना !

इस तरह ऐकासणा / आयंबिल में भी

पोरिसी, साढपोरिसी..

पोरिसी, पुरिमड्ढ...

पोरिसी, अवड्ढ... या

साढपोरिसी, पुरिमड्ढ....

साढपोरिसी, अवड्ढ... या

पुरिमड्ढ, अवड्ढ...

- ऐसे पच्चक्खाण हो सकते हैं

इस तरह दो विभाग में लेना हो तो बियासणा / एकासणा / नीवि / आयंबिल विगैरह का पच्चक्खाण...

ऊगए सूरे नमुक्कारसहिअं (अथवा.. **पोरिसिं / साड्ढपोरिसिं...** खाना खाने वक्त तक करना हो.. वह) **मुट्ठिसहिअं पच्चक्खाइ (पच्चक्खायि) चउविहंपि आहारं, पोरसीं** (अथवा... **साड्ढपोरिसी / सूरे ऊगए पुरिमड्ढ अवड्ढ..** खाना खाने तक करना हों तो एक बोलना) **पच्चक्खाइ (पच्चक्खामि) तिविहंपि आहारं असणं पाणं..** से बाकी का एक जैसा !

और, पच्चक्खाण पारना हो तब...... चैत्यवंदनादि करने के बाद अंतिम मुट्ठी बांधकर पारते 'उग्गए सूरे नमुक्कारसहिअं (अथवा... **पोरिसिं**-विगैरह चोविहार के साथ का पच्चक्खाण लिया हो वो एक बोलना) मुट्ठिसहियं पचक्खाण कर्यु चोविहार, पच्चक्खाण फासिअं....... दुक्कडम्....... !' इतना ही पारना।

इसलिए, आगे के तिविहार के साथ की पोरिसि /सांढपोरिसी/पुरिमड्ढ/अवड्ढ का पच्चक्खाण और बियासणा / एकासणा / आयंबिल विगैरह का पच्चक्खाण चालु रहता है।

उसके बाद जब वापरने हेतु बैठना हो तब आसन के ऊपर बैठकर ही मुट्ठसी पचक्खाण पारकर उस तरह ही मुट्ठी बांधकर 'उग्गए सूरे पोरिसी (अथवा-साढपोरिसी/सूरे उग्गए पुरिमड्ढ / अवड्ढ - जो भी तिविहार का दूसरा पच्चक्खाण किया हो वह एक बोलना) मुट्ठिसहिअं पच्चक्खाण कर्यु तिविहार, आयंबिल/विगइओ, एकासणा/बियासणा, पच्चक्खाण कर्युं तिविहार पच्चक्खाण

फा..पा...'
(इरियावही करनी बाकी हो तो वह करके.. भी इसके लिए कोई अलग से इर्यावही करने की जरूरत नहीं है ।)

* * * * *

(3) हैमविजयजी को उपवास या अट्ठम के पारणे में भी एकासणा तो मिनीमम होता ही है ! सलंग आयंबिल करने के बाद भी ढाई महीने के बाद पारणा हो उस दिन भी एकासणा करते हैं उसमें भी पोरिसी (प्रायः) पुरिमड्ढ ! ऐसा डबल पच्चक्खाण ही होता है ।

उनके रोज के आयंबिल/एकासणा में भी पानी का पोरिसी पच्चक्खाण और गोचरी का अधिकतर पुरिमड्ढ पच्चक्खाण.. इन दोनों में कोई बदलाव नहीं ।

उत्सर्ग मार्ग से तो पुरिमड्ढ के बाद ही पानी वापरने की विधिहै उसकी सापेक्षता रखने के भाव से ही 'पुरिमड्ढ तक चोविहार न हो पर तिविहार तो कर ही सकते हैं' - इस तरह मन में धारणा करके इस तरह वे हमेशा दो विभाग में पच्चक्खाण लेते हैं ।

कभी कोई कारण से पुरिमड्ढ ना कर सके तो 'साढपोरिसी तिविहार' तो करते ही हैं पर, पानी तो पोरिसी के बाद ही वापरते हैं । (स्व-समाचारी में नवकारसी के साथ आयंबिल/एकासणा की भी छूट है, तो भी उत्कृष्ट मार्ग के विधिराग के प्रभाव से कम से कम पच्चक्खाण पोरिसी... उसमें कोई बांधछोड नहीं ।)

(4) इस ग्रंथ में ऐसी भी विधिबताई है कि वापरने के बाद चैत्यवंदन करके संक्षेपार्थे पच्चक्खाण करना !

बस ! इन्होंने यही पकड लिया ! हररोज एका. / आयं हो जाये इसलिए खुद ही मुट्ठसी बच्च. लेकर खडे होने के बाद तुरंत चैत्यवंदन करके गुरूवंदन करने पूर्वक तिविहार का पच्चक्खाण करते हैं ।

* * * * *

(5) प्रतिक्रमण-प्रतिलेखन-पोरिसी-पूरे दिन में अलग-अलग भी जितनी इर्या-वही करने में आये, वे सभी, गुरूवंदन.

कोई भी क्रिया हो.. उसमें हरेक खमासमणा, सभी सत्तरह संडासा के पूर्वक ही !

तीस-चालीस-पचास साधुओं को वंदन करने हों तो भी उनके हरेक वंदन के तीन या चार खमासमणें में कोई फर्क नहीं पडता ।

सुबह संथारे में से उठते ही पूरे दिन में जब चाहे खमासमणा आये.. उनका एक

भी खमासमणा संडासा से रहित नहीं होता। इतना ही नहीं रात को सिर्फ मात्रु करने के लिए 1 या 2 बार उठना पडे उस वक्त भी इरियावही तो खडे खडे ही करते हैं।

साथ में उसका खमासमणा भी संपूर्ण संडासावाला ही !

रात-दिन का कोई भेद क्रिया में देखने को नहीं मिलता

दूसरा, उनके खमासमणाओं की यह विशिष्टता है कि..

सत्तर संडासा तो है ही, साथ-साथ में खमासमणा देते-देते भी हम पकड ना सके ऐसी दूसरी संभाल भी बहुत रखते हैं।

- सूत्र चालु होता है - ''इच्छामि'' तब से दो हाथ जोडे हुए ही होते हैं।
- 'जावणिज्जाए' से कमर को झुकाना।
- निसीहिआए तक खडा ही रहना, हाथ भी जोडे हुए।

इतने शब्द बोलने के बाद... 14 संडासे में अधिक उपयोग रखकर संपूर्ण अंगों की प्रमार्जना के पूरते लक्ष्य के साथ प्रयत्न।

बराबर कपाल (माथा), हाथ, पैर, ओधे को पूजने की संभाल।

- 'मत्थएण वंदामि' बोलते पुनः दोनों हाथ जुड जाते हैं।
- सिर (मस्तक) बराबर ओधे को / जमीन को स्पर्श करता।
- पीछे बराबर तीन बार पूँजने का कभी नहीं चूकते

इस तरह उनके पूरे दिन का एक नहीं, पर हरेक खमासमणा संपन्न होता है.. चालु प्रतिक्रमण में एक साथ 3-4-6-9 खमासमणे आये वह भी हरेक व्यवस्थित खडे रहकर, उपर के अनुसार ही।

* * * * *

(6) पूरे दिन की (और रात की भी) सभी ही क्रियाएँ संपूर्ण खडे-खडे ही होती है। या तो वह आवश्यक क्रियाएँ हो या फिर अलग-अलग इरियावहि करनी हों... जितनी क्रियाएँ होती हैं वे सभी खडे-खडे ही...

यह बात तो जो कि सामान्य है.. ऐसा हैमविजयजी के लिए मुझे कहना ही पडेगा

क्योंकि विशिष्टता यह है कि

कोई भी क्रिया में जो भी सूत्र बोले जाये, उसमें संपूर्ण यानि की पहले शब्द से अंतिम शब्द तक हाथ जोडे हुए ही रहते हैं। और आगे बढकर कहूँ तो जो आदेश माँगने में आये उसमें भी (आदेश के पहले खमासमणा हो तो वह देकर पुनः खडे होकर) आदेश के पहले शब्द से अंतिम शब्द तक हाथ जोडे हुए ही रखते हैं।

'रोजिंदी क्रियाओं में कितनी जगह ऐसे आदेश माँगने में आते हैं ?'

यह बात करते उन्होंने मुझे पूरा लिस्ट बनाकर दिया है !

- पूरे दिन में लगभग 18 से 20 बार 'इरियावहि' का आदेश माँगना होता है ।

- राई प्रतिक्रमण में..

सभी ही कायोत्सर्ग में आदेशों के वक्त बराबर हाथ जोडकर ही खडे रहते हैं... पर खास करके

(1) जगचिंतामणि का - ''चैत्यवंदन करूँ ?''

(2) ''... सज्झाय संदिसाहुं ?''
''.... सज्झाय करूँ ?''

(3) 'इच्छकार' + ठाबने का आदेश

(4) 'पगाम सिज्जाए' का

(5) 'अब्भुट्ठिओं' का

(6)'.... बहुवेल संदिसाहुं ?'
''बहुवेल करशुं ?''

(7) (अंतिम दो) ''चैत्यवंदन करूँ ?''

इन सभी स्थानों में । उठते-उठते बैठते बैठते आदेश माँग लेते हैं । पर वे तो यह सभी आदेश भी खडे होकर ही मांगते हैं फिर आगे चलते हैं !

- राई पडिलेहण में...

(1) 'पडिलेहण करूँ ?'

(2) '.. पडिलेहणा पडिलेहावोजी !'

(3) '.. उपधिमुहपत्ति' का

(4) 'उपधिपडिलेहुं ?'

- सज्झाय में

(1) '... सज्झाय करूँ ?'

(2) '... उपयोग करूँ ?'

(3) '.. बहुवेल संदिसाहुं ?'

(4) '.. बहुवेल करशु ?'

(5) यह सभी स्थान ऐसे हैं कि बैठे-बैठे आदेश माँग लेते हैं ।

- पात्रा पोरिसी में

(1) '.. बहुपडिपुन्ना पोरिसी ?'

(2) '.. पडिलेहण करूँ ?'

- मंदिर में देववंदन के तीन चैत्यवंदन के आदेश..

- पाठ लेने के लिए (वंदन के बाद के) तीन आदेश..

- पच्चक्खाण पारने में
(1) '.. चैत्यवंदन करूँ ?'
(2) '.. सज्झाय करूँ ?'
(3) मुहपत्ति का
(4) '..पच्चक्खाण पारू ?'
(5) '.. पच्चक्खाण पार्युं ?'
- (वापरने के बाद का) संवर-चैत्यवंदन का आदेश..
- देवसी पडिलेहण में
(1) '.. बहुपडिपुन्ना पोरिसी ?'
(2) '.. पडिलेहण करूँ ?'
(3) '.. वसति प्रमार्जु ?'
(4) '..पडिलेहणा पडिलेहावोजी ?'
(5) 'उपधिमुहपत्ति का'
(6) '..सज्झाय करू ?'
(7) '.. उपधिसंदिसाहुं ?'
(8) '.. उपधिपडिलेहुं ?'
- मांडला का आदेश
- देवसी प्रतिक्रमण में
(1) '.. चैत्यवंदन करू ?'
(2) '.. देवसि पडिक्कमणे ठाऊ ?'
(3) 'सव्वसवि...'
(4) 'अब्भुट्ठिओ' का
(5) '..देवसिय पायच्छित्त वि.. काउ करू ?'
(6) 'सज्झाय संहिसाहुं ?' + '.. सज्झाय करूँ ?'
(7) '.. दुक्खक्खय क नि काउ करूँ ?'
- संथारा पोरिसी..
(1) '.. बहुपडिपुन्ना पोरिसी ?'
(2) '.. चैत्यवंदन करूँ ?'
(3) 'मुहपत्ति' का
यह सब मिलकर पूरे दिन के दौरान-

लगभग 70 से 75 जितने आदेश आते हैं, वे एकएक आदेश बराबर खडे होकर **पहले शब्द से अंतिम शब्द तक** हाथ जोडकर ही माँगते हैं !

* * * * *

(7) इस तरह हरेक वांदणे में

(1) 'वंदिऊं तक अंजलि..'

(2) '.. मिउग्गहं निसीहि' तक थोडा नमकर रहना.. बाद में

(3) आगे पूंजकर (भगवान के एक-दो कदम नजदीक) अवग्रह में जाना..

(4) संडासा पूंजकर मुद्रा करते हैं..

(5) 'अहो..' और 'जत्ता मे' दोनों वक्त सिर जमीन से पाँच से छ: ऊँगली आगे ही ऊपर रखते हैं, इतना नमकर ओघे से नजदीक मस्तक रखते हैं। (6) पीछे ऐडी का भाग थोडा भी ऊपर नहीं होने देते..

(7) 'अ'-'हो' वगैरह.. और 'ज'-'भे' वगैरह.. हरेक अक्षर में यथायोग्य ओघे को या कपाल को अग्रभाग अडता ही है..

(8) 'ता', 'व्व', 'च' वक्त दोनों हाथ की ऊँगलीयाँ परस्पर अडती हैं..

(9) 'संफास' और 'खामेमि' के वक्त और झुककर ओघा को सिर अडता ही है

(10) 'खमासमणो' बोलने से पहले ही तुरंत खडे हो जाना

(11) 'आवस्सियाए' बोलने के बाद ही, तुरंत पूंजकर बाहर आना।

(12) 'आयरिय उवज्झाए' के पहले के वांदणे में..

(13) और 'छट्ठे आवश्यक की' मुहपति के बाद के वांदणे में.. दूसरे वांदणे के बाद पूंजकर पीछे आना..

.. यह सभी ही आवर्तादि विधिसँभालते हैं ! वह वे ना करे, तो उनको जचता ही नहीं है !

* * * * *

(8) वंदन करते वक्त भी इच्छकार + अब्भुट्ठियों का पूरा आदेश हाथ जोडकर खडे रहकर ही माँगना, कभी तो बडी संख्या में साधु-भगवंत हो तो भी 20-30-40 जितने भी वंदन करे, वे सभी संपूर्ण अप्रमत्ततापूर्वक खडे !

पदस्थों विगैरह को दोनों टाइम करने हों तो वह भी इस तरह ही करते हैं, चाहे जितनी बडी संख्या हो !

* * * * *

(9) दोनों प्रतिक्रमण के वक्त..

(नीचे) आसन नहीं...

(बीच में) कपडा (या पांगरणी) नहीं, और

(छः आवश्यकमय मुख्य प्रतिक्रमण दौरान तो-)

चश्मे भी नहीं !

कारण ?

प्रतिक्रमण यथाजातमुद्रा में ही करना होता है, इसलिए सिर्फ चोलपट्टा और कंदोरा ही चाहिए (जिस तरह बडे जोग की सज्झाय-पाटली विगैरह महव की क्रियाएँ हम करते हैं वैसे !)

यह नियम सभी ऋतुओं में एक जैसा ही पालते हैं,

यानि ?

यानि कि यही कि..

पोष-माह महिने की कडकडती ठंडी हो,

या फिर मेवाड-मारवाड क्षेत्र की थरथरती ठंडी हों,

उनका प्रतिक्रमण छोटी खोली में हों या विशाल 'हॉल' में

उनको अगले दिन एकासणा या आयंबिल भी हो या फिर उपवास हों कोई भी परिस्थिति में राई प्रतिक्रमण भी बिना आसन और बिना कपडे काम्बली से ही करते हैं।

(ठंडी में सिर्फ डेढ दो महीने गुर्वादेश से छः आवश्यक की आगे/पीछे के प्रतिक्रमण में आसन+कपडादि रखते हैं ।)

.. सिर्फ एक बार उन्होंने प्रतिक्रमण बैठे-बैठे किया था.. (करना पडा) (देखो, विरतिदूत, अंक-112 में आई 'हमारी रणयात्राः रत्नत्रयी की यात्रा') उसमें भी, दूसरे दिन सुबह उठकर जो प्रतिक्रमण किया.. वह तो संपूर्ण खडे-खडे ही किया.. मानो रात को कुछ हुआ ही नहीं था !

✻ ✻ ✻ ✻ ✻

(10) सुबह पडिलेहण करते वक्त जिस तरफ उजाला अधिक मिले वहाँ पूरी उपधिलेकर जाते हैं.. खिडकी / दरवाजे के तरफ पीठ रखकर पडिलेहण करते हैं.. इसलिए, कपडे के उपर बराबर प्रकाश पडे ।

हा ! विहार के कारण अथवा पाठ जल्दी होने से कम उजाले में/अँधेरे में पडिलेहण करना भी पडे । एक बार पडिलेहण कर लेने के बाद पीछे से सभी कपडे का सूर्योदय के बाद पुनः एक बार दृष्टि पडिलेहण करके विधिसापेक्षता संभाल ही लेते हैं ।

✻ ✻ ✻ ✻ ✻

(11) सुबह 'पाँच-वाना' करे उसमें ही ओधा खोलकर बांधदेते हैं। उसके बाद ही इरियावहि करके आगे के आदेश माँगते हैं.. उसमें भी एकदम कट्टर !

(क) उसमें भी कभी ऐसा भी बनता है कि कोई वडील विगैरह का लाभ लेना हो और उसके लिए धाई (जल्दी) होती हो तो उसमें या तो...

(1) पूरा ओघा खोलकर पडिलेहण करते हैं.... या फिर बराबर बांधने के बिना सिर्फ पाटे में दांडी रखकर.... नीचे की दोरी बीच तक बांधदेते हैं.. और बाकी का ओघारीया विगैरह पडिलेहण किये हुए आसन के उपर व्यवस्थित रख देते हैं।

फिर तुरंत इरियावही करके लाभ लेते हैं..

(उसमें यदि दांडी के विना सिर्फ ओघा ही रखे तो फिर एक खमासमणा भी अविधिवाला देना पडे... पूंजना नहीं होता ? इसलिए दांडी रखते ही हैं !)

अथवा,

(2) यदि ओधा पडिलेहण करने जितना भी टाइम ना हो... ऐसा लगे तो उपर से ओधा का पडिलेहण करके पाँचवाना कर देते हैं। और बाद में इरियावहि करके लाभ लेकर आगे के आदेश माँगने से पहले खुद का ओघा तो बाँधही देते हैं !

(3) दूसरा, ऐसे तो कभी भी किसी को भी एक दंडासण या कंदोरा जैसी 10 बोलवाला पडिलेहण भी कभी नहीं देते, उसमें भी अफर नियमवाले हैं

काजा भी उनसे 10 साल के छोटे पर्यायवाले हों, उसे भी... साथ साथ में लिया जा रहा हो तो भी नहीं लेने देतें !

पर, हमारे पास आने के बाद, हमारी मांडली के नियम के अनुसार (मन से दुःखी होकर भी) चलना पडता है। इसलिए दुखाते मन से भी सिर्फ उपवास के दूसरे दिन सुबह दूसरे पडिलेहण करे तो ना नहीं कह सकते हैं !

उसमें भी; ओघा तो कभी भी नहीं देते.. फिर भी कभी उपवास कठिन हुआ हों.. पित्त निकल रहा हों.. वैसी परिस्थिति में (वर्ष में 1 बार कभी) कोई दूसरे महात्मा ओघा बांधने के लिए लेकर भी गये हों वैसे प्रसंगों में... ओघा जब तक बंधआये नहीं वहाँ तक हैमविजयजी सज्झाय नहीं ही करते हैं ! कोई भी हालत में 'बांधे हुए' ओघे से ही सज्झाय करते हैं !

(इस पक्कड के कारण हमको कितनी ही बार विहार में उनके लिए रुकना पडा है - यह बात अलग है।)

* * * * *

(12) काजे के नियम में बहुत ही सावधानी वाले

- सज्झाय के पहले स्वयं की जगह से काजा ले लेना,

- जहाँ 1 से अधिक पडिलेहण किया हों, वहाँ काजा बाकी नहीं रखते हैं !

- सज्झाय करनी हों उस जगह तो काजा लिया हुआ ही होना चाहिए, पर साथ में स्थापनाजी के नीचे भी काजा लिया हुआ हों तो ही सज्झाय करनी (जोग में जिस तरह नियम है उसके अनुसार)

- स्वाध्याय-कायोत्सर्ग-गोचरी-संथारा तो ठीक है पर कभी भी कहाँ पर भी बैठना हो तो वहाँ काजा लिया हुआ ही होना चाहिए - नहीं तो वहाँ आसन बिछाकर, पालथी लगाकर तो नहीं ही बैठते !

- विहार में उपर ढँका हुआ हो ऐसी कोई भी जगह पानी वापरना हो तो काजा लेकर पुनः इर्या. करने के बाद ही पानी वापरते हैं !

- दीक्षा के प्रसंगों में जाना हो (इसके सिवाय तो दूसरे कोई भी महोत्सवादि में जाने की बात ही नहीं.. फिर भी कभी ऐसे कोई भी अन्य प्रसंग में) वर्ष में 1 या बहुत बहुत तो 2 बार जाने का होता है) तब वहाँ भी नीचे काजा लेकर तथा पाट होती है तो उसका पडिलेहण करके वहाँ ही बैठते हैं ।

(वहाँ जाहिर में इरियावाहि खडे-खडे करनी शक्य ना हो तो अपवाद रूप में बराबर समझकर टट्टार बैठकर दो हाथ जोडकर ही इरियावहि करते हैं ।)

* * * * *

(13) 'ओधा-मुहपत्ति चालु क्रिया में नीचे गिर जाये तो इरियावहि करके आगे बढना चाहिए' यह जो आचरणा सर्वमान्य है और इसलिए यह मुनि उस वक्त तुरंत इरियावहि कर लेते हैं ।

इस तरह समझो, पात्री चेतना विगैरह पडिलेहण करते करते कभी-कभी हाथ में से गिर जाये तो भी वायुकाय की विराधना के कारण इर्यावाहे का प्रायश्चित आता है इस तरह शुद्धि कर ही लेते हैं ।

* * * * *

(14) 'दंडासण', झोलीयाँ, दोरा, कपडा विगैरह कुछ भी दोरी के ऊपर लटकाते रखने से वह उपधिनहीं चलती (गुज. में हणाई गई एम कहेवाय) फिर उसको उपयोग में नहीं ले सकते । वह साधु के लिए अयोग्य बन जाती है । इस प्रतिपादन को बराबर पकडकर रखा, उनका एक भी उपकरण कभी भी खीली वगैरह पर टंगा हुआ नहीं मिलता ! झोलीयाँ झोली तो रखते ही नहीं हैं, पर दंडासण भी या तो दिवाल के टेके से अथवा नीचे जमीन पर ही रखते हैं ।

* * * * *

(15) साबु का उपयोग तो मूल मार्ग से साधुजीवन में प्रतिषेधही है । इसलिए वह महात्मा जब काप निकालते हैं तब तो 'साबु का उपयोग नहीं करना' इस नियम के असार ही चलते हैं । उसमें भी ऐसा नहीं कि दूसरे महात्माओं ने साबु में काप निकाला हो, उसके पीछे के पानी में परचुरण / गुच्छा / पोथी / पल्ला विगैरह निकालकर 'चौमासी' काप का कार्य पूरा कर देते । इतने अंश भी साबु के असर की अपेक्षा रहे, वह नहीं ही चलाते ।

और, लूणें निकालने में साबु का उपयोग करें तो भी चिकास दूर हो उतने ही प्रमाण में.. उसका उपयोग करते हैं वह सफेदी आनी चाहिए इसलिए अधिक साबु का उपयोग करना ऐसी वृत्ति तो भूल से भी नहीं होती । मेहनत अधिक करके समय-व्यय को स्वीकार लेते हैं पर अपवाद वह अपवाद के तरीके से ही अपनाते हैं ।

* * * * *

(16) पच्चक्खाण पारने के बाद 17 गाथा.. पक्की गोखी हुई.. रोज की बोली हुई होने से अनुपयोग के साथ भी सडसडाट पसार हो जाती है ऐसा वर्षों से चलता रहा पर जब उन 17 गाथा की टीका पढकर विशद अर्थ समझ लिया और उसके बाद तो ऐसी आदत हो गई कि हमेशा अर्थ में उपयोग रखकर ही 17 गाथा गिनते हैं..
कभी उपयोगान्तर हो जाये, बीच में चूक जाये तो गाथा भले बोल दी हों पर फिर भी जहाँ से अनुपयोग में बोलने का ख्याल आये, वहाँ से पुनः बोलते हैं ।

* * * * *

(17) अरिहंत चेइयाणं सूत्र, करेमि भंते, पगाम सज्झाय में अब्भुट्ठिओमि आराहणा से आगे.. ऐसे खडे-खडे बोलने के सूत्र.. अन्नत्थ सूत्र हो या इच्छकार हो, आदेश में भी अब्भुट्ठिओं का आदेश हो या फिर सव्वसवि का या दूसरा भले कुछ भी हो सभी में अंतिम अक्षर तक हाथ जोडे हुए रखकर ही आगे का काउसग्ग या खमासमणा विगैरह चालू करते हैं । ऐसे, मुद्राओं के विषय में भी दोनों पैरों के बीच में 4-3।। ऊँगुली, अंजलि, वीरासन, शकासनादि में रहकर ही उन उन सूत्रों में आगे बढने का नियम पक्का ।

* * * * *

(18) अपने यहाँ 7 मांडली का महव बहुत है । उसके लिए स्पेश्यल 7 आयंबिल कराने में आते हैं । इसलिए उसमें से एक मांडली आवश्यक - प्रतिक्रमण

मांडली भी बहुत आदर से संभालनी चाहिए ।

पर यह महात्मा के लिए एक बडी फरियाद है कभी भी कोई भी कार्य / प्रसंग पर समयसर हाजिर नहीं होते । इसलिए लगभग प्रतिक्रमण मांडली में भी लेट कम्मर तरीके का परमानेन्ट पास ले लिया है ।

इरियावहि, चैत्यवंदन या थोय तक जोईन्ट हो जाते हैं । पर कभी तो उसमें भी जो पहुँच ना पाये तो थोय बाकी रखके सीधा एक नमुत्थुणं कहकर जोईन्ट हो जाते हैं ..। यह इनकी बहुत बडी कमजोरी है ही ।

पर उसमें भी मुझे एक विशेषता बतानी है ।

यह जो चार थोय बाकी रही, वह पीछे से करनी होती है उसके लिए 'अब्भुट्ठिओं' के बाद या 'आयरिय उवज्झाय' के बाद फास्ट करके बीच में चार थोय करके स्तवन के वक्त जोईन्ट हो जाते हैं । वे ऐसा नहीं करते ।

क्यूं ?

क्योंकि.. एक बार तो मांडलीमें लेट आना हुआ वह तो दोष लगा ही है । पर अब साथ में होने के बाद भी पुनः जुदा (अलग) करके दूसरा दोष क्यों खडा करना ? बस ! यही गणित ! इसमें इतना तो होता है कि मुख्य् छः आवश्यक की क्रिया + स्तवनादि 4 परंपरागत कर्तव्यों में.. इन सभी में तो मांडली को संभाल ही लेते हैं ना ? इसलिए यह सब होने के बाद अंतिम लोगस्स बोलने के बाद ही 4 थोय का उधार पूरा करके देते हैं ।

और कभी ऐसा भी बनता है कि कोई जरूरी कारण से प्रतिक्रमण समय-सर जल्दी समापन करना पडे वैसा हो । तो भी इतना तो कम से कम पकड कर ही रखते हैं कि छः आवश्यक पूरे होने तक तो आगे नहीं दौडता है ।

मांडली का गौरव बराबर संभाल ही लेना चाहिए ।

(19) और भी एक बात मजे की है कि कभी वे लेट हो जाये तो ऐसे लेट हो जाते हैं कि चार खमासमणा भी यदि विधिवत् संडासादि विधिको संभाल कर करे तो पूरी मांडली, श्रावक संघ को रुकना पडे, तो लेट आने की भूल करने के बाद वे खमासमणे में टाईम लगाने का अविवेक नहीं करते, पर उस वक्त ऑन द स्पोट बैठे-बैठे ही अथवा बाद में अति कटोकटी में तो चार बार सिर हिलाकर सुपरफास्ट एक्सप्रेस की भाँति भागते हैं ।

पर यह अविधि-अपवाद (?)(!) के सामने विधिसापेक्षता बराबर पकड के रखते हैं । यानि की पूरा प्रतिक्रमण हो जाने के बाद वही चार खमासमणो विधिपूर्वक

'भगवान्ह विगैरह' बोलने के साथ अलग-अलग देकर भी आत्मसंतोष प्राप्त कर लेते हैं।

* * * * *

(20) कभी बहुत महात्मा इकट्ठे होते हैं तब ऐसा बनता है कि 2/4 को वंदन भी रह जाये। उसमें उनकी गलत आदत ही कारण बनती है कि वे सूर्यास्त के बाद ही वंदन चालु करते हैं। तो कहाँ से मेल पडे ? पर तो भी 1-1 महात्माओं की नोंधपक्की रखते हैं, इसलिए जितने बाकी हों उन सभी को याद करके स्थापनाजी के सामने वंदन करने के बाद ही मांडला करते हैं। वह भी खडे-खडे, बाद में रात को मिले तो पास में जाकर पैर छूकर मत्थएण वंदामि कर लेते हैं।

* * * * *

(21) हरेक सूत्र पूरे दिन में चाहे कभी भी उच्चारपूर्वक ही - होठ हिलाकर ही बोलना और एक भी कायोत्सर्ग में होठ या जीभ जरा भी नहीं हिलाते।
और दोनों नियम का भी उन उन स्थान पर पूरा उपयोग के साथ पालन करना।

* * * * *

(22) राइ प्रतिक्रमण में या दोनों ही टाईम वंदन करने के बाद जो पच्चक्खाण खडे-खडे ही नतमस्तके ही लेना। यह तो ठीक पर साथ में पीछे-पीछे मंद स्वर से बोलने की विधिभी बराबर पालनी। यानि कि वडिलादि के मुख से जो शब्द निकलते जाये वे-वे पुनः स्वयं अवधारण करते रहते है और बीच-बीच में तीन बार **'पच्चक्खाइ'** के बाद **'पच्चक्खामि'** प्रगट रूप से बोलेंगे ही और अंतिम में **वोसिरामि** भी सुनाई दे इस तरह बोलते हैं !

* * * * *

(23) वर्ष में एक बार ही काप निकालते हैं !

ऐसा भी नहीं, कि 3-4 महीने में कपडे फट जाते हैं। इसलिए काप निकालने की आवश्यकता ही नहीं, नये ही लेते हैं, उसमें तो सब बराबर हो जाता है।

नहीं। उनकी वस्त्रों के लिए संभाल भी बहुत ही है।

अंत में तो इनके कपडे भी इतने जीर्ण होते हैं कि लुणे निकालने के बाद (लुणा का काप) हम लुणे को खुल्ले करने के लिए दोनों ओर खींचते हैं ना। इतना जो उनके कपडे या चोलपट्टे को खिंचने में आये, तो वह फट जाता है। फिर भी वे सँभाल-सँभालकर उपयोग करते हैं और यह करने से ही उनका एक ही कपडा-एक-डेढ-दो

वर्ष तक चलता है ।

अब एक ही कपडा इतने लंबे टाइम तक चलाना हो, तो काप निकाले बिना तो कैसा मेला होता है ? वह कपडे भी किस तरह पहने ? पर हैमविजयजी तो मस्ती से पहनते हैं ।

खास,

यह जो कोई भी काप निकालते हैं, उसमें साबु-सर्फ किसी का उपयोग नहीं । सिर्फ और सिर्फ पानी ही लेना ? यदि कोई बडा स्वामीवात्सल्य का प्रसंग हो या भोजनशाला जैसा हो तो वहाँ चावल का ओसामण (पानी) निर्दोष मिल जाता है । एक घडा चावल का पानी लेकर आते हैं उसमें ही वाषक काप भी निकालते हैं । लास्ट में 1-2 बार सादे पानी में निकाल देते हैं । सिर्फ ओसामण (चावल का पानी), सादे पानी में धोये हुए वस्त्रों आगे के वर्ष तक चलते हैं, धोने भी नहीं पडते और फटते भी नहीं है ।

अभी भी उन्होंने साबरमती डी.केबीन में इस पद्धति से काप निकाला, और वह मैंने नजरोनजर देखा है ।

✻ ✻ ✻ ✻ ✻

(24) सुबह के प्रतिक्रमण के बाद दो चैत्यवंदन में रेकोर्ड की हुई केसेट की जैसे एक ही चैत्यवंदन, स्तवन, थोय बोलने में आये वह उनको अच्छे नहीं लगते । रोज ही अलग-अलग स्तवन विगैरह बोलते हैं । भले 2-5 ही आते हैं, पर उसमें भी रोज बदलते रहते हैं इसलिए उपयोग रहता है । नहीं तो सूत्र जिस तरह अनुपयोग में जाते हैं उस तरह यह स्तवन चैत्यवंदन में हो जाते हैं । ऐसा यह होने नहीं देते । उनके सभी सूत्रों में भी 100% नहीं फिर भी बहुत उपयोग तो होता ही है - ऐसा मैंने पूछ लिया है ।

✻ ✻ ✻ ✻ ✻

(25) यति जीतकल्प में उन्होंने जाना कि - खाँसी, छींक, बगासा, ओडकार, वातनिसर्ग के समय भी यदि मुँहपत्ति का उपयोग विगैरह विधिना सँभाले तो प्रायश्चित आता है । सामान्य से तो पहले से ही इस विषय की परंपरागत सँभाल उनके ध्यान में थी ही, फिर भी जिसमें जिसमें ख्याल नहीं था उसका पालन चालू हो ही गया है ।

षट्काय संरक्षक

(1) लगभग हम सभीका कंदोरा डबल होता है, उनका कंदोरा सींगल । पीछे से मुझे पता चला कि 'डबल कंदोरा रखने से वायुकाय की विराधना ज्यादा होती है...... इसलिए सींगल ही कंदोरा रखा है । ' (उसके बाद मैंने भी सींगल कंदोरा कर दिया है । गृहस्थ जिस तरह कंदोरा पहनते हैं, उस तरह पहनना शुरू किया ।)

* * * * *

(2) बडे उपाश्रय में तीन - चार जगह काजा लेना होता है, तब एक जगह काजा लेकर, सूपडी में इकट्ठा करके दूसरी जगह काजा लेने जाते हैं तब सूपडी साथ में बंधी हुई, काजा लेने की पूंजणी तो लटकती होने से हिलती रहती है ना ? इससे वायुकाय की विराधना ज्यादा होती है ना ?

उन्होंने वह विराधना टालने का उपाय पकडकर उसके लिए हमेशा के लिए प्रयत्न शुरू कर दिया.. वह पूंजणी को हाथ से दबा देते हैं, इसलिए एक जगह से दूसरी जगह जाते वह लटकती ना रहे.. हिला ना करे.. ।

साथ में बीच की दोरी भी बडी होती है वह भी बराबर पकडकर रखते हैं जिससे वायुकाय की विराधना ना हो ।

* * * * *

(3) वैशाख-जेठ की भयंकर गरमी हों, और उस वक्त एकदम गरमागरम पानी वहोरने आया हों, तो भी वे स्वयं के लिए तो थालों में (परातों में) पानी नहीं ही ठंडा करते हैं । दूसरे महात्माओं की भक्ति निश्चित करेंगे, करते ही हैं, अच्छे में अच्छा ठंडा करते हैं, पर स्वयं तो चाय जैसा उबला हुआ पानी भी चला लेते हैं ।
कारण ?

- परात (थाल) स्पेश्यल साधुओं के लिए खरीदी हुई होती है, रखी हुई होती है (अब तो बनती भी है ।)

- परातों में ठंडा करने के लिए रखे पानी में जीव उड-उडकर गिरते हैं, मरते हैं.. ऐसी संभावना..

- वायुकाय की विराधना होती है ।

- जीभ की आसक्ति का पोषण होता है ।

- समय बिगडता है ।

पुनः याद कराऊँ

यह सब मैंने पढा या सुना नहीं है, पर मेरी आँखों से अंतिम तीन-चार वर्ष से जो नजरोनजर देखा, उनका वर्णन करता हूँ । उसमें अतिशयोक्ति का एक भी अंश नहीं है ।

* * * * *

(4) पढाई करते वक्त हमेशा के लिए पात्रा पूंजने की पूंजणी अथवा साफ लुणा साथ में ही रखते हैं । कोई भी पुस्तक-प्रत विगैरह लेनी हो, तब वे पूंजणी से बराबर चारों तरफ पूंज लेते हैं । बाद में ही पुस्तक विगैरह लेते हैं ।

तदुपरांत, शास्त्रों में लिखा ही है कि पुस्तक खोल-बंद करने में छोटे-छोटे त्रस जीवों की विराधना होने की पूरीपूरी संभावना है । इसलिए हैमविजयजी सांधे के भाग को (जोईन्ट्स) कोने के भाग में बराबर पूंजणी से या तुणे से पूंजने के बाद ही पुस्तक पन्ना खोल बंद करते हैं ।

* * * * *

(5) जिस पेन में उपर से दबाने में आये, ऐसी टक-टकवाली पेन आज तक वापरी नहीं है ।

कारण ? टक-टक आवाज से शब्दोत्पत्ति के द्वारा वायुकाय की विराधना और पेन की अंदर का भाग ऊपर से दबाने के कारण ऊपर-नीचे होता है, वहाँ पूंजना किस तरह संभव बने ? उसमें, छोटे-छोटे त्रस जीवों की विराधना की भी संभावना रहे ?

दूसरी बात..

जेल या ईन्क वाली बालपेन नहीं वापरते । क्योंकि, जेल में पानी का अंश आता है - वह कितने समय तक अचित्त रहती है ? वह अनिश्चित है ।

जिस तरह, पानी में चूना डालने से 72 घंटो तो वह अचित्त ही रहता है पर पुनः वह सचित्त ही बन जाता है ? वैसे ऐड जेल जैसी बालपेन की इन्क में आता हुआ पानी भी उसके साथ के केमीकल के कारण एक बार तो अचित्त बन भी जाता है, तो भी बाद में.. कितने समय तक वह अचित्त रहे ? वह सबसे बडा प्रश्न था ही,

तीसरी बात..

एकदम सिम्पल-सस्ती बोलपेन वापरते हैं इस जमाने में एक या ज्यादा से ज्यादा दो रूपये में जो पेन मिले वही वापरते हैं ।

* * * * *

(6) विहार के दरम्यान रास्ते में कालमी काल में पानी वापरने बैठना हो, तब वह झाड के नीचे ही बैठते हैं, तो भी ऊपर बराबर देख लेते थे कि, पत्तियों के बीच में जरा भी जगह हो तो कामली को निकालते नहीं हैं, मिट्टी के घडे को खुल्ला नहीं करते हैं, और घडे को गोदी में ले लेते हैं और बाफ नास लेते समय पूरा शरीर ब्लेन्केट से ढंक लेते हैं उसी तरह कामली से पूरा शरीर, घडे को ढंग देते हैं, फिर अंदर ही पानी को वापरते हैं इससे फिर कामली कालकी विराधना भी अटक जाती है ।

अगर सूर्य के किरण पत्तियों के बीच से निकलकर वृक्ष के नीचे आते हों, तो उसका अर्थ यह है कि जिन पत्तियों के छिद्रों में से किरण नीचे आती हो वही छिद्र में से स्नेहकाय - सूक्ष्य अप्काय भी आ सकते हैं इसलिए वहाँ पर उसकी विराधना की संभावना रहेगी ? (क्रोस में से सूर्यकिरण आए वह नहीं, परंतु वृक्ष के बरोबर ऊपर से अथवा तो जरा क्रोस में से भी किरण आ सकते हैं, उनकी यह बात है ।)

* * * * *

(7) राजकोट चातुर्मास करने हम बारह साधु जा रहे थे । एक दिन शाम को हम सभी को मुख्य हाईवे के पास बडे मैदान में, और वह मैदान के बीच एक मंदिर में रहना हुआ । किसी इतर देवता के मंदिर का गभारा एकदम छोटा था, और उसके बाहर के ओटले की जगह भी एकदम छोटी, तो भी नाछूटके बारह साधुओं को वहाँ संथारा करने का आया ।

रोड से मैदान के मंदिर तक पहुँचने के लिए लगभग डेढसौ कदम चलना पड रहा था । हम दो-तीन साधु सूर्यास्त के पहले ही पहुँच गये थे । नीचे देख-देखकर मंदिर के पास पहुँचे हमको तो 125-150 कदम चलने में तो दो मिनिट बहुत ज्यादा थी।

मैं मंदिर के खुल्ले-ऊँचे ओटले के ऊपर खडा रहकर रोड की ओर देख रहा था क्योंकि यहाँ पर रहने का पहले से निश्चित नहीं था । 'जहाँ पर जगह मिले, वहाँ पर रहेंगे' - 'महावीरपुरम्' से निकलते ऐसे निश्चित किया था इसलिए पीछे रहे हुए साधु आगे चले न जाएँ, उसके लिए आवाज देकर इस ओर बुला रहे थे । हमारे आने के बाद दूसरे चार-पाँच महात्मा 1-2 1-2 करके आ गए ।

मैंने हैम वि. को देखा, आवाज देकर इस तरफ आने को कहा । वह रोड पर से मैदान की ओर चल पडे, मैंने स्पष्ट देखा । उसके बाद मैंने दोरी बाँधी कपडे सुखाने वगैरह के काम में लग गया । दस मिनिट के बाद मैं फ्री हुआ, मैंने फिर से रोड की ओर नजर की, तो हैम वि. अब तक तो रोड से मंदिर तक के आधे रस्ते तक पहुँचे थे ।

खाली 50-60 कदम चलते दस मिनिट लगे ? बाप रे बाप ! -

परंतु मैंने ध्यान से देखा तब पता चला कि हैम वि. एक-एक कदम नीचे बरोबर देख-देखकर रख रहे थे और वह भी पैर की ऊँगुलीयों को जमीन से स्पर्श करके चल रहे थे (अद्धर चल रहे थे) उनकी नीचे देखने की ढब.. उनकी नजर.. इतनी तीव्रतम थी कि इतना स्पष्ट लग रहा था कि वे जीवों को बचाने के लिए, इस रीति से धीरे-धीरे आ रहे थे ।

पहले के नजदीक के दो-तीन दिनों में और वह दिन शाम को थोडी बारिश होने से अंदर के रास्ते पर कोई-कोई जगह पर थोडी-थोडी घास, फूटी हुई कुंपण और कोई-कोई जगह पर चींटियाँ वगैरह.. भी थी इसलिए वह अंकुरे, घास या चींटीयाँ वगैरह की विराधना स्पर्श से भी न हो उसके लिए वे अत्यंत जागृत थे।

हम सभी भी नीचे देख-देखकर ही आये थे, परंतु हम तो दो मिनिट में ही आ गए थे और उनको तो दस मिनिट आधे से भी कम पहुँचने में हुई थी । अप्रमत्तता किसे कहते हैं ?

उसका मुझे इन अनुभवों से ख्याल आया।

✻ - एक चीज ध्यान लेना कि - वह जो भी करते हैं, उसमें कभी भी ऐसा नहीं लगता कि वह हमें दिखाने के लिए, स्वयं की आचारचुस्तता जाहिर करने के लिए करते हैं । उनकी प्रवृत्ति एकदम साहजिक ही होती है । ऐसा एकदम स्पष्ट लगता है ।

'वह आचारपालन में माया का सेवन करते हैं, कपट करते हैं' - वैसा तीन-चार साल के अनुभव में मुझे तो ऐसा कभी भी नहीं लगा ।

सूक्ष्म संयम पालक

(1) पोरिसी प्रतिलेखन करके पात्रा की जोड या पात्री को रखे तो उसमें भी एक विशेषता है । एक पात्रे में दूसरे पात्र को रखने के पहले बीच में कोई ना कोई कपडा या दोरा (तरपणी-घडे का) ऐसा नक्की रखते ही हैं । कारण ? भी अजीब लगे वैसा ही है, कदाचित् किसी को हँसना आए - मजाक उडाए वैसा भी बन सकता है!

परंतु उसमें भी एक राजा है !

- हम सभी एक के अंदर एक इस रीति से पात्रा को रखते हैं उसमें सभी को अनुभव होगा कि नीचे के पात्रे में ऊपर के पात्रा की पत्रिका (पदधी का) गोलाकार घिसता-घिसता दिखने में जल्दी अलग हो जाता है । इसलिए वह भाग में बार-बार घिसने से रंग निकलता रहता है ।

- अब उसमें ऐसा होता है कि.. यह भाग का समय जाते ज्यादा घिस जाने से एकदम लकडा बाहर आ जाता है । फिर क्या होगा ? बस खाली इतने भाग के कारण पूरा पात्रा फिर से रंगना पडेगा.. अथवा बाद में लकडे के भाग मे चिकनाई भीगी हुई रहने से भीगा हुआ रह जाता है.. वह सब होता है ।और उन दोनों में संयम के दोष, अस्वाध्याय वगैरह बहुत से दोषों की परंपरा चलने की पूरी संभावना रहती है ।

- बस यह अनवस्था में स्वयं का भाग न जाए उसके लिए वह बीच में रजस्राण, गुच्छे या कुछ न हो तो आखिर पहले के छेडे को भी रखकर पात्रा रखते थे । ऐसे दो पात्री के बीच लुणा या दोरा रखते ही थे ।

* * * * *

(2) गोचरी वहोरने में बहुत बार ऐसा बना है कि पात्रा-तरपणी-चेतने का बाहर का या ऊपर का भाग कभी-कभी रेला वगैरह जाने से बिगड जाता था.. वह जो तुरंत लुणे से पोंछ लेने से झोली-पल्ला बिगडे नहीं यह बात प्राय: सभी को ख्याल में ही है ।

परंतु यह महात्मा वह मसाले को-तेल का - घी का वगैरह कोई भी गोचरी का अंश लुणे में जाकर सीधा काप में निकल जाता है.. परंतु हैम वि. ऐसा चलाते नहीं थे ।

उसमें भी गणित यही कि..

- श्रावक वगैरह संयम की पुष्टि के लिए जो श्रद्धादि भावों से सुपात्रदान करते हैं,

उसके एक-एक कण और एक-एक बुंद उन्होंने जिन भावों से वहोराया है वह वसूल होने ही चाहिए, इस तरह सीधे लूणे से पोंछ देना वह नहीं चलाते हैं ।

- आज के विषम काल में हजारों लोगों को भूखे पेट से दिनों के दिन बिताने पडते हैं । उसमें वह सभी 1-1 दाने के लिए कितने तडपते होते हैं, वह सभी समझते ही हैं उसके सामने हमें ढेर सारा मिलता हो - ऐसी पुण्याठ में ऐसी अन्न-पानी की उपेक्षा हो वह नैतिक रीति से योग्य कैसे कहलायेगी ?

- जितना लुणा ज्यादा बिगडे-चीकना होता है उतना पीछे से काप निकालना पडता है । उसमें काम बढता है स्वाध्यायादि की हानी होती है - और जल्दी चिकनायी पकडने से एक लुणे से काम नहीं होने से और एक्स्ट्रा दूसरा लुणा लेने का होता है । यह सभी परंपरा चलते आखिर अनेक दोष खडे होते हैं, वह तो स्पष्ट ही है ।

- लुणे जितने चिकने ज्यादा, उतना साबु का उपयोग भी ज्यादा.. पानी तो ज्यादातर दोषित ही होता है - उसका भी उपयोग ज्यादा होता है और निर्दोष हो तो भी इतना ज्यादा लाने से अन्य योग में असर पहुँचे.. वह सब भी विचारना होता है ।

और, उसे परठने वाले पानी में भी ज्यादा चिकना निकलती है । वह जब परठना पडे तब जीव विराधना के चांस से बढ जाने की पूरी संभावना है ।

- इस रीति से बिगडा हुआ भाग सीधा ही पोंछ देने में प्रमाद का पोषण होने की संभावना रहती है.. 'अगर पहले से ही 'बिगडे नहीं' उसके लिए पहले से ही बरोबर ध्यान रखा हो, तो काम भी नहीं बढता इसलिए ध्यान रखकर पहले से ही न बिगडे उसका प्रयत्न करना चाहिए ।'

- इसलिए यह मुनिवर क्या करते हैं ? वह देखिये..

सबसे पहले सूचना करने के बाद भी वहोरनेवाले को अगर न जमे और समझो कि गिर जाएँ, तब जो जमीन पर गिरे तो छदत दोष लग जाने से सबसे पहले यही होता है कि वहीं घर से दूसरा कुछ भी वहोरने का नहीं.. वह घर फिर छोड देते हैं ।

और यह पात्रा वगैरह बिगडे उसे तुरंत ऊँगलियों से पोछ लेने से उसका रेला आगे न बढे या दाना जैसा नीचे कुछ भी गिरे..

और वो ऊँगली में आया हुआ खाद्यांश उसी पात्रा और तरपणी में लिया जा सकता है उतना लेकर बाकी का जितना भी चिपका हुआ हो.. उसके लिए ऊँगली तरपणी के अंदर के भाग में अथवा तो पात्रा के अंदर के भाग में जहाँ खाली-सुखा ही हो वहाँ.. व्यवस्थित घिसकर साफ करते हैं.. इस तरह करने से बहुत-सी चिकनाई-निकल जाती थी । फिर खाली फाईनल साफ करने का बाकी रहे उसे लुणे से कर देते थे

। इस रीति से करने से उनको गोचरी में लिया हुआ लुना लगभग नहीं वापरने जैसा ही रहता है, हमारी भाषा में दूसरे लुने के तरीके से आराम से उपयोग कर सकते है ।

* * * * *

(3) उसी पद्धति में आगे.. गोचरी लेकर आने के बाद पात्रा सीधा जमीन पर नहीं रखते है । सबसे पहले तो एक तरपणी रखकर नीचे पूंज लेते है । फिर दूसरी तरपणी रखते है । उसके बाद बडा पात्रा निकालते है.. और अगर जो वह नीचे से बिगडा हुआ हो तो चावल के दाने या दूसरा कुछ भी चिपका हुआ हो तो उसी रीति से बराबर संभाल ले लेते है (जयणा कर लेते है).. पहले लिया जाय उतना ले लेते थे और फिर अंत में ऊँगली से बराबर पोंछ लेते है ।

ऐसा करके बाकी के पात्रा भी रखते है.... फिर अगर चेतना, टोकसा हो तो वह सभी नीचे से साफ होने की संभावना न हो तो, पास में रहे हुए हो उन्हें कहते हैं । दूसरे महात्मा स्वयं की आदत के हिसाब से तुरंत लुना हाथ में लेते है तब तुरंत म.सा. सूचना करते है । ''ऐसा नहीं ऊँगली से एक बार पोंछ लो ।''

शास्त्रीय विधान के अनुसार से **'गोचरी मांडली शुद्ध रहे'** उसकी पूरी सावधानी रखते है उनका चले तो पूरी मांडली में एक भी चेतना या पात्रे की पगीका का गोल आकार दिखे नहीं ऐसी तकेदारी रखते है ।

गोचरी निकालने करने में हाथ बिगडते हैं.. स्वयं को तो आंबिल हो.. तो उस समय दूसरे महात्मा को विनती करके उनको जो पानी वापरने में लेना हो उसमें ही हाथ साफ कर लेते थे सीधे लुने से हाथ पोंछने की बात तो दूर रही.. परंतु हाथ धोने में भी वलही रीति से कोई दाने-कनीये भी न रहे और चिकनायी भी न रहे उसी रीति से पानी से एकदम साफ करके फिर ही लुने से पोंछते थे..

थोडा भी बिगाड नहीं होने देते थे.. और लुने भी कम से कम बिगडे.. उसका तो पूरा ध्यान रखते ही थे । नहीं तो ऊपर लिखे हुए सभी दोष की संभावना खडी हो जाती है ।

(4) उनकी खुद की गोचरी तो सब एक पात्र में ही । आंबिल तो था ही । लाते भी एक पात्र में और दूसरों के पास मंगवानी हो तो भी उसी रीत से ।

एकासना हो तब - कभी-कभी बडी मांडली भी होती थी, तो उस समय एक साथ में ही सब लेते थे.. 'सब्जी, दाल, मिठाई, केला.. जो भी अलग-अलग लेने जैसी चीजें हो वह सब भी एक पात्र में ही । खाली दूधवापरना हो उसमें तेल-

मिर्चवाली चीजें इकट्ठा करने से स्वास्थ्यबाधक कहलाता है इसलिए वह सीधा इकट्ठा नहीं करते थे । बाकी तो दूधवाले पात्र में ही सब्जी वगैरह जो भी लेना हो वह ले लेते थे..'

उसमें फिर ऐसा नहीं कि दूधका एक भी बुंद तेल के साथ मिक्स न हो.. पहले दूधवापरकर पात्रा खाली हो उसमें मस्ती से बाकी की सभी चीजें, जो भी 6-7 चीजें लेनी हो उसे लेकर उसका ऊँधीया-खिचडी-पुलाव-भेल-कोकटेल-पंचकुटिया जो भी गिनो वह, हेन्डमेड तैयार हो जाएँ और फिर मस्ती से **''निरस रसवती रस थी जमता रसवती निरस थईने''** - उस पंक्ति की झांकी कराये वैसा उनका एकासना चलता था ।

उसमें विशेषता यह है कि.. वह गोचरी वापरे तब **अंत तक एक भी दाना या एक भी बुंद नीचे गिरा हुआ नहीं मिलता था**, जोग में जैसे हम सब एलर्ट रहते हैं वैसे उनको हमेशा के लिए - '' श्वक्द्र क्यद्रह्लठुद्रह्यह्य ? '' साहजिक हो गई थी ।

हाँ । उनको सूंठ की फाकी लेनी हो उसमें भी थोडा-थोडा उडकर नीचे गिरता था । परंतु मैंने बहुत बार देखा है कि वह वापरते-वापरते एक बाजु ऊँगली से उसका एक एक कण लेते जाते थे और अंत में तो पूरी भूमि एकदम क्लीयर करके ही छोडते थे । एक कण भी छोडना तो नहीं है ।

उनको यह संभव इसलिए बनता था कि लीमीटेड वापरना होता था इसलिए लेने में भी गिरने की संभावना एकदम घट जाती थी और वापरने भी हैरान-परेशानी तो कम..

पापड-चटणी-नमकीन-ममरा वगैरह सभी कडक-चीजें,सिझा हुआ या तला हुआ नरम फरसाण-छुंदा-मुरब्बा, सींग-दाना, केले सिवाय के फ्रुट्स, ड्रायफ्रुट्स (बदाम बिना के) सभी शरबत-पानी वगैरह-वगैरह एक भी चीज नहीं लेते । सभी का दीक्षा के वर्ष से आजीवन बंद करके बैठे हैं ।

(ऐसे तो पहले ही पूरा लिस्ट दे दिया है.. यह तो फिर से बात आने पर थोडा यहाँ बताया है ।)

इसलिए, ऊपर की बात का सार - 'परिमित द्रव्यों के हिसाब से भी वह जम जाता है - वह दिमाग में बैठे वैसी बात है.. फिर उनको पानी बिना की पात्री या दूसरा पात्रा नहीं लेना पडे उसमें आश्चर्य भी कहाँ से हो । और, सभी के ऊपर गिरना नहीं चाहिए - ऐसा दृढ संकल्प, और साथ में ध्यान भी इतना । इसलिए, वह वापरकर

उठते है तब वहाँ काजा लेने की जरूरत भी नहीं रहती थी - उस बात पर कभी भी फेरफ़ार नहीं था।'

अपनी बात चल रही थी संयम की सूक्ष्मताकी ! इसमे यह कहाँ से आया? चलो वापिस जहाँ थे वहाँ पर आ जाएँ है।

* * * * *

(5) वापरा हुआ लुना भी झूठा हो.. उसमें 'आहार' - खाद्यांश चिपके हुए रहते ही हैं। वह अगर जो रात को ऐसे के ऐसे ही रह जाएँ तो हम संनिधिका दोष मानते ही हैं।

परंतु, यह महात्मा उनके बुजुर्गों के पास से उसमें भी सूक्ष्मता सीखने के लिए चूके नहीं है.. इसलिए, पात्रे पोंछते समय या कभी भी.. जो पहला या दूसरा लुणा किया हुआ हो उसे चोलपट्टे पर, ओघा या ऐसी कोई भी जगह पर नहीं रखते थे..

अरे। पोंछते-पोंछते भी टच हो जाता है, तो भी वह घबराते हैं - आहार के अंश लग जायेंगे तो ? इसलिए लुने के तरीके से उपयोग किया हुआ भूल से भी कभी चोलपट्टादि को टच होने नहीं देते थे।

कोई भी इस तरह से रखते हैं या देते हैं तो भी तुरंत उठाके ओघा - चोलपट्टा का भाग पानी से घिसकर वहाँ का वहाँ साफ कर देते हैं। नहीं तो सूक्ष्म संनिधिहो जाता है।

(6) उनको जितना टाईम वापरने में होता है, उससे ज्यादा पात्रा धोने-पोंछने में होता....

- सबसे पहले तो गोचरी वापरने का हो जाए तब ऊँगली से बराबर उपयोग करके 'संलेखना-कल्प' की विधिको बराबर करते हैं.. इस रीति से करने के बाद उनका पात्रा देखते 'जैसे उपयोग ही न किया हो वैसा' ही दिखता है।

- एकासने में पातरे में चिकनाई हो ऐसा लगे तो उसे दाल या धनिया जीरा लाया हुआ है, तो उससे घिस - घिसकर साफ करके फिर संलेखना करते हैं।
कभी-कभी सूंठ हो तो उससे भी चला देते हैं।

- उसके बाद, एकदम कम से कम पानी लेकर जघन्य से तीन बार पानी से धोने का पक्का। (सूखी, रूक्ष वस्तु के लिए ही उपयोग किया हुआ पात्रा हो, तो भी दो बार तो धोने का ही।)

और उसमें भी जो निर्दोष पाणी हो तो वही लेते हैं, जिससे खुराक के ऊपर तुरंत दोषित पाणी मिक्स न हो।

जो पानी निर्दोष न हो तो मिश्रादि दोषवाला पानी भी लेना पडे तो अंत के

खाद्यांश में पूति दोष लगता है इसलिए भी लेना एकदम पक्का ही कर लेते हैं जिससे खाद्यांशो का पानी के साथ पूति दोष खडा न हो ।

- इस रीति से बराबर त्रि-कल्प करने के बाद भी.. प्रकाश में आडा-तीर्छा देखकर दो-तीन लूने से पात्रा को एकदम साफ करते हैं इतना साफ कि एक छोटा सा भी कण या लाईट-लाईट निशान या दाग वगैरह कुछ भी नहीं मिलता है ।

- उनके पास दूसरे महात्माओं के पात्रे धोने में आएँ वह भी खुद के हो वैसा समझकर, इतना साफ करते थे कि कोई भी भूल न निकाल सके । चिकनाई तो दूर.. परंतु पानी का भी सूखा दाग देखने का नहीं मिलता था ।

- ऐसा करने के पीछे विभूषा का आशय भी हो सकता है ।

- परंतु, वह तो खुद के पात्रे में ही करते हो, तो भी समझे । परंतु दूसरों के भी पात्रे इस तरह से एकदम साफ करने में विभूषा का आशय हो.. वैसी संभावना कम रहती है । यह हेम वि. के लिए 100 प्रतिशत आशय की शुद्धि मैं मानता हूँ..

उनका आशय स्पष्ट था कि, 'थोडी भी चिकनाई रह जाए तो उसमें.. मुझे या जिनके पात्र हो उसे.. संनिधिका दोष सूक्ष्म रीति से लगता है - वह नहीं होना चाहिए । उसके लिए बार-बार प्रकाश में आडा-तोडा कर-करके बरोबर पोंछकर ही छोडेंगे ।'

- आखिर में खुद के पात्रा-तरपणी वगैरह दूसरों के पास धोने में गए हों तो उसे भी पहले देखते हैं - और लगभग उनको संतोष नहीं होता है । इसलिए 1-2 बार अंत में हाथ फिराते ही हैं ।

.. यह सब करते उनको आधा-आधा घंटा और कभी-कभी पोना घंटा से भी ज्यादा टाईम हो जाता है । इसलिए मेरा दिमाग तो उनके ऊपर बिगडता है कि 'इसमें भला यह कितनी गहराई में जा रहे हैं ।'

तो भी मैं यह सब चलाते ही आया हूँ । दो-चार बार बोला भी है.. आखिर अब अमुक दृष्टि से इनकी बात भी सच्ची है और काम करने में स्फूत न हो उसमें कोई दूसरा क्या कर सकता है ?

.. वैसा सोचकर मौन रहता हूँ ।

(7) कभी भी, नीचे बैठते वक्त पूँजकर (प्रमार्जना करके) ही बैठते हैं इतना तो निश्चित ही है परंतु उसमें जागृति के साथ शास्त्रोक्त विधिकी पूरी पकड रखते हैं । - सबसे पहले, आसन हाथ में हो या नीचे पडा हो.. वह वैसे ही रखकर स्वयं घुटने के पीछे का संडासा पूंजकर उभडक पैर से बैठ जाते हैं ।

- फिर, जहाँ पर बैठना हो उस भूमि के भाग को ध्यान से देखकर फिर से बराबर

प्रमार्जते हैं ।

- उसके बाद, आसन के नीचे के भाग को बराबर देखकर आसन बिछाते हैं ।

- उसके बाद, आसन के ऊपर का भाग देखकर, पूँजकर धीरे से उस पर बैठते हैं।

- इस पूरी प्रक्रिया में से पसार होना उनके लिए रूटीन है ।

कभी-कभी स्वयं स्वाध्याय करते-करते या चालू पाठ में से भी खडे होकर कुछ लेने करने जाएँ अथवा दूसरे कोई काम से खडा होना पडे तो भी खाली 4-6 सेकंड का मामूली अंतर भी पडा हो तो.. तब भी यह पूरी विधिफिर से करेंगे ही ।

* * * * *

(8) इसी रीति से रात को संथारा बिछाने में भी..

- पहले तो पूंजकर उभडक पैर से बैठते हैं,

- फिर संथारा खुल्ला करके दोनों घुटनो पर फैला देते हैं ।

- उसके ऊपर उत्तरपट्टा खोलकर रखते हैं.. फिर दोनों के छेडे इकट्ठे करते हैं ।

- एक हाथ से ओधा से भूमि को पूंज-पूंजकर बिछाते हैं ।

(छोटी साईज का संथारा है, तो भी 2-3 टुकडे पूंजकर उनका संथारा बिछाते हैं ।)

- उसके बाद उत्तरपट्टे को ऊपर से पूंजकर खुद उसके ऊपर बैठते हैं ।

- अंत में संथारा करते वक्त सिर-पीठ वगैरह ओघे से बरोबर पूंजकर, संथारे के ऊपर पूंजकर फिर उस पर संथारते .. (सोते) हैं ।

.. यह पूरी प्रक्रिया हुई खाली संथारा बिछाने की ।

- रात को लघुनीति के लिए उठते हैं .. (ठंडी में कभी-कभी दो बार भी उठना होता) तो उस समय भी फिर से पूरा संथारा उठाके फिर से ऊपर बतायी हुई विधिसे पूंजकर ही फिर से संथारते (सोते) हैं ।

आपवादिक यतना में यत्नशील

(1) हमारा राजकोट में चातुर्मास था । मुझे एम.आर.आई. कराने जाना हुआ । उस समय मु.हैम.वि. को साथ में ले जाना हुआ । वहाँ की कोठारी हॉस्पिटल उपाश्रय से लगभग 1 - 1.5 कि.मी. दूर थी । वहाँ दोपहर का समय लिया हुआ था इसलिए वापरने के पहले 11.30 के आसपास हम निकले । मेरी झडप चलने में एकदम ज्यादा इसलिए मेरे साथ चलते-चलते हैम वि.भी थोडी ज्यादा झडप से चलने के कारण थक गए तो भी..

इस तरह हमारे पहुँचने के बाद, वहाँ ऑफिस वर्क में समय लगने से हमको 10-15 मिनट राह देखनी पडी.. साथ में आनेवाले श्रावकभाई ने हम दोनों को साहजिक औचित्यपूर्वक विनंती की.. 'साहेब । यह लो कुर्सी । बैठो ना ।'

श्रावक के पक्ष में यह विवेक उचित, आवश्यक ही गिना जाता है । पर यह महात्मा वहाँ ऐसी कोई भी कुर्सी, टेबल पर नहीं ही बैठेंगे । उसका मुझे ख्याल ही था और ऐसा ही हुआ ।

वहाँ, कोई गद्दीवाली या कोई साधुजन को विशेषत: अयोग्य कह सके ऐसी कुर्सी नहीं थी, कि जिसके ऊपर बैठ ना सके, इसलिए कि - 'लकडे की प्लास्टीक की या ऐसी कोई सीधी सादी बैठक (बैठने की जगह) ना मिले इसलिए नहीं बैठना है' - ऐसा नहीं..

पर बस । जहाँ पर हो वहाँ पर बने तक ऐसे कोई **गृहस्थों के उपयोग में लिये हुए ऐसे बैठक का उपयोग नहीं करना ।** यह उनके दिमाग में एकदम फीट हुई आचरणा थी । इसलिए चाहे जितना समय हों तो भी खडा ही रहना ।

- कहाँ समझो ऐसा बने कि, कोई ऐसे संयोगों में आप जमीन पर बैठ सको ऐसा ना हों, पर कुर्सी विगैरह पर ही बैठना पडे ऐसा आवश्यक हो, तो क्या करो । मैंने एक बार उनकी परीक्षा करने के लिए ही पूछा,

- ''लगभग तो ऐसा बनता ही नहीं है, इसलिए ऐसा कोई विचार किया ही नहीं है ।'' उन्होंने सामान्य से उनका स्वानुभाव आगे किया । ''पर फिर भी धारो कि ऐसा

अवसर आ ही जाये तो क्या ।'' मैंने पुन: भार देकर परिपक्वता की कसौटी करने के लिए बात आगे बढाई ।

- तो उस वक्त फर्स्ट नं. में तो टेके बिनाका के टेबल के जैसा मिलता हो तो ही पडिलेहण, प्रमार्जन करने पूर्वक ही उपयोग करना.. और इस तरह थोडे आगे के भाग से ही बैठता हूँ। और जैसे कार्य पूरा हो इसलिए तुरंत ही खडा हो जाता हूँ।

- यह था उनका क्रमबद्ध यतना में छूट लेने की विधिका मार्गस्थ क्षयोपशय जन्य जवाब । मैं संतुष्ट हुआ । और साथ में ऐसी जागृति रखनेवाले भी आज के काल में मिलते हैं। उसके बदले जिनशासन की गरिमा को नतमस्तक होना ही पडा ।

- 'प्रभु । ऐसी छोटी छोटी बातों में भी सँभाल यथाशक्ति भी यदि आपका श्रमणसंघ करने में तत्पर बन जाये, तो संयम की शुद्धि कितनी बढने लगे !!'

- मुझे सहज विचार आ गया !

* * * * *

(2) उसके बाद, हम राह देख-देखकर 15 मि. जितने खडे रहे । उसके बाद अंदर से भाई आया और 1-2 बात पूछकर कहा - ''किसे करानी है ?''

- ''मुझे !'' मैंने इशारे के साथ ही जवाब दिया ।

- ''अंदर आ जाओ'' उसने बाजू के थियेटर की तरफ आगे बढते हुए दरवाजा खोलते कहा ।

''आप पधारो । मैं यहाँ ही खडा हूँ'' - उस महात्मा ने तुरंत विनंती की ।

मुझे ख्याल आ गया कि अंदर ए.सी. चालू है । यह ख्याल आ जाते ही तुरंत छटकने का ही प्रस्ताव रखा है । मुझे भी जो कि इसमें कोई दिक्कत नहीं थी, कोई ओपरेशन जैसा तो था नहिं कि कोई संभालने वाला नजदीक चाहिए ।

फिर भी.. वैसे मेडीकल लाईन में मुझे समझ कम पडती है इसलिए मेरी वृत्ति के अनुसार सेफ साईड रखने के तरीके से मैंने उस भाई को ही पूछ लिया..

''दूसरे किसी की जरूरत तो नहीं है ना ?''

''जरूरत है । इनको अंदर ही खडा रखो ।'' उस भाई ने तो खुद के कार्य में उपेक्षाभरे स्वर से जवाब दे दिया । मुझे ख्याल तो था ही कि इनको अच्छा नहीं लगेगा । तुरंत उनका मुँह उतर गया । (उदास हो गये ।) मैं उनके स्वभाव की यह मर्यादा जानता ही था.. 'वे स्वयं की बात को जल्दी छोड ही नहीं सकते हैं -'

फिर भी 'यह कह रहे हैं तो अब । अंदर ही चलो ।' मैंने भी फिर उनकी 'आज्ञा स्वीकार' की पात्रता को परखी हुई थी । इसलिए तुरंत कह दिया । दुखते मन से उस

भाई पर दिमाग बिगाडकर वे अंदर आ गये ।
पूरी रूम में सिलींग के उपर फीट किये हुए छोटे छोटे ए. सी. के खाने थे । इसलिए पूरा वातावरण व्यवस्थित अनुकूलतादायक ही था ।

उसमें मैं, तो सूचना के अनुसार एम.आर.आई. मशीन की मुवेबल ट्रे के ऊपर चढ गया ।

मेरे हाथ में से ओघा लेकर उस भाई ने कहा - ''यह (मशीन की) बाहर रख दो.. और मैंने पास के टेबल पर वह ओघा रख दिया ।''

रखने के बाद मुझे थोडी उलझन तो हुई.. इतने ही समय में तुरंत मुनिवर पास में आये और ओघे को मेरी बाजु में बराबर रखकर उस भाई को कह दिया-
''इसमें तो कोई मेटल नहीं आता.. सिर्फ वुलन और वुडन ही है । उन्होंने खुलासा दे दिया ।''

क्योंकि वे समझ गये थे कि - 'मेग्नेटिक फिल्ड में मेटल नहीं चलता है.. इसलिए मु. हैमविजयजी ने तत्काल होशियारी का उपयोग करके इस टेस्ट के दरम्यान भी 'साधु लिंग अखंड रहना चाहिए..' उस शास्त्रीय विधिको उन्होंने सँभाल ली..'

उसके बदले में मैंने भी उनको पीछे से बहुत धन्यवाद दिये.. क्योंकि जब भी ओपरेशन के प्रसंग आते हैं.. कदाचित् सीरीयस तबियत भी हो जाये और जिंदगी का सवाल भी हो तब और प्राणत्याग का (कालधर्म) निर्णय हो जाने के बाद भी रजोहरणादि द्रव्यलिंग में ही मृतदेह को अमुक समय तक रखना - ऐसा विधान शास्त्रों में आता है.. । अभी भले मुझे ऐसी कोई गंभीरता नहीं थी.. फिर भी शास्त्रीय विधितो संभालनी ही चाहिए ना.. कभी भी कुछ भी हो जाये कहाँ कुछ कह सकते हैं ।'

इसलिए मैंने भी बाद में 'अंदर आये तो अच्छा हुआ ना ।' ऐसा कहकर उनका मन हल्का हो जाये उसके लिए उपबृंहणा कर ली । मेरा यह फर्ज भी है ।

फिर भी मैं जानता हूँ कि - उनके मन में 'इस तरह अंदर ए.सी. में 25 या 30 मिनिट तक रहना पडा' उसका दु:ख हुआ ही होगा ।

पर मुझे बात तो यह करनी है कि-

मेरे तो दिमाग में क्लीयर ही था कि - 'उस समय भी' वह पूरी जयणा रखेंगे ही । उन्होंने तो उस समय (एम.आर.आई. के पहले) कुछ कहा नहीं था - कहने का टाईम ही नहीं था.. पर बाद में 1-2 दिन के बाद गोचरी मांडली में सभी के बीच में ही उनकी परीक्षा की..

'उस दिन होस्पिटल में तुमने अंदर रहकर क्या किया ?'

'कुछ नहीं । क्या करूँ ? थोडा बहुत स्वाध्याय किया.. एकदम एकाग्रता रख ना सका, दूसरी जगह तो दूसरे विचारों में टाईम पास हो जाता है वह कदाचित् चल जाये.. पर वहाँ ए.सी. में कहा लीन बनूँ.. इतना विचारकर ज्यादा से ज्यादा परावर्तनात्मक स्वाध्याय ही कर लिया ।' उन्होंने स्वयं के विशद आशय की पेशकश सभी के आगे चाहकर की, मुझे लगा कि

- 'इस बहाने से वे दूसरे सभी को भी विवेक दे रहे थे.. उनका स्वभाव जानता हूँ.. इसलिए ख्याल है कि ऐसी संयम की छोटी-छोटी बातों में दूसरों को टोके बिना उनसे रहा नहीं जाता था ।'

''काजा लेकर बैठे थे ।'' मैंने उनको प्रश्न किया ।

'' नहीं । मैं तो खडा ही था । '' मेरी अपेक्षा के अनुसार ही मुझे जवाब मिला ।

''टेका लेकर ।'' मैंने पुनः सीधा पूछ ही लिया ।

''नहीं ।'' मुझे जिसका विश्वास करना था, अथवा तो, मुझे जिसका विश्वास था ही उसका स्पष्ट जवाब मिल गया ।

--यह थी उस महात्मा की अपवाद में यतना की परिणति .. 'ए.सी. में रहना भी पडे तो कुर्सी के उपर तो नहीं ही, पर नीचे भी बैठना नहीं और खडे भी बिना टेके रहना.. और उसमें भी स्वाध्याय करने में मन लगाकर खडा रहना ।'

(और उसमें भी यह तो मुझे पक्का विश्वास है कि.. यह उनकी साहजिक प्रकृति है । 'कोई देख रहे हैं या नहीं । पीछे से किसी को पता चलेगा तो ।' ऐसे कोई भी विकल्प के बिना ही हो जाती उनकी साधना की ये सीढियाँ है ।)

* * * * *

(3) एक वृद्ध महात्मा (उंम्र लगभग 89-90 जितनी होगी ।) उनको अति विकट परिस्थिति में गरमी की सीजन में ए.सी. में रखना पडा । मुनिराज उनकी रूम में तो गये, वंदन भी किये - पर बाहर से ही व्यवस्थित जाडी काम्बली ओढके उन्होंने अंदर प्रवेश किया, वंदन करके पुनः बाहर आने के बाद उनको पसीना हो गया था । इसलिए ए.सी. की असर खुद के शरीर के ऊपर नहीं होनी चाहिए - यह लक्ष उन्होंने साधलिया ।

* * * * *

(4) दूसरे एक विशिष्ट प्रसंग में सेन्ट्रल ए.सी. हॉल में उनको जाना पडा । औचित्य की दृष्टि से वहाँ रहना अनिवार्य लगा । तो उस हॉल में ए.सी. है यह पता चला इसलिए तुरंत बाहर आकर काम्बली ओढकर अंदर गये । दो - तीन घंटे इस तरह

से ही बैठे। जैसे समापन हुआ कि तुरंत दौडकर बाहर आ गये।

* * * * *

(5) दो-तीन बार ऐसा बना कि.. कोई खास प्रसंग में, मेरे कहने से उनको दूसरे के पास गोचरी मँगवानी पडी। उस समय ही उनके स्वभाव के अनुसार-सूचना कर-करके, बाद में ही मँगवाई।

गोचरी लानेवाले महात्मा स्वयं के पूरे क्षयोपशम के अनुसार बराबर पूछपरछ करके गोचरी लाये थे तो भी यहाँ आने के बाद इस महात्मा ने इस तरह प्रश्न किये कि उसके अनुसार निर्णय ऐसा हुआ कि 'यह वस्तु मिश्र दोषवाली ही लगती है।'

ऐसे तो ये मुनिवर, ऐसी गडबड की बहुत वार ठोकर खाकर दूसरों के पास गोचरी मँगवाते ही नहीं है। पर फिर भी मेरी प्रेरणा - प्रज्ञापना को स्वीकार कर 'साधमक वात्सल्य, परस्पर की मैत्री विगैरह में वृद्धि होने की शक्यतादि लाभों का महव अधिक है' - ऐसा विचार करके मँगवाते हैं। उसमें भी कभी ऐसा हो, तब तुरंत उनको अच्छा नहीं लगता - 'आचार चुस्तता में समाधान करने की बारी आये कुछ नीचे उतरना पडे' ऐसे प्रशस्त कारणों से ही।

पर फिर भी, धीरे-धीरे अब ऐसी भूमिका में आ गये हैं कि ऐसा कभी बन जाये, एकासणा में या आयंबिल में कोई मिश्रदोषवाली या स्थापना दोषवाली वस्तु आ जाये, तो भी मन में कोई भी आक्रोश आने नहीं देते।

पर मुख्य बात यह है कि - यदि अब ऐसे समय में सभी की गोचरी आ ही गई हो.. पर्याप्त हों.. वापर ली हो, विगैरह कोई भी कारणों से.. वह द्रव्य.. दूसरे किसी को चले ऐसा, ना हों तब वे अंदर से जागृति शुद्धि रखकर वापरने के लिए ले लेते हैं। ऐसा, कि दूसरी कोई भी निर्दोष वस्तु आई हुई हो.. तो पहले वापर के पूरी कर लेते हैं और पात्रादि भी सभी साफ करके अंत में.. जिस तरह द्विदलवारण के लिए कच्चे दही-छाश अलग से लेकर जिस तरह व्यवहार करते हैं उस तरह अकेले अकेले सभी वस्तु लेकर (दो नंबर की) वस्तु को पूरा करते हैं।

यदि सभी ही गोचरी साथ में वापरे तो वे द्रव्य एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं। पर ऐसा नहीं ही करते हैं.. कारण यही है कि 'पूतिदोष' एक्स्ट्रा में जो होता है वह तो खुद के हाथ में है ना। बस, उसका निवारण करना।

(6) कभी पुस्तक अरजेन्ट मँगवाने हो, कोई 'तुरंत जरूरी' समाचार लेने-देने का कार्य आ पडा हो कि उसके सिवाय भी फोन कराना पडे वैसी कोई परिस्थिति खडी हुई हो तो पहले नंबर से तो लेन्डलाईन से ही कार्य पूरा करते हैं और संभव ना हो

तो ही मोबाईल वाले को कार्य सौंपना पडे पर तभी जो समाचार विगैरह लेने-देने हों तो पहले से ही फोनवाले को कह दें और फिर खुद खडे नहीं रहते.. सिर्फ पीछे से फोन पूरा हो जाये तो पूरी विगत जान लेते हैं ।

कभी ऐसा भी बनता है कि लंबी बात हो, जवाब मिलने के अनुसार ही कार्य करना हों ऐसे कारणों से साथ में रहकर बात करानी पडे, ऐसा लगे तो पूरी पक्की संभाल करते हैं कि स्वयं की आवाज सामने पहुँचनी ही नहीं चाहिए यानि कि फोन या मोबाईल के रीसीवर तक स्वयं की आवाज जानी ही नहीं चाहिए । स्पीकर तो चालू नहीं ही करवाना, पर उसके सिवाय भी पर्याप्त अंतर में खडा रहकर धीमी आवाज से बात करते रहना कि जिससे यह आपवादिक दोष-सेवना में जयणा सँभाल सके । उसमें भी जितनी बात फिक्स हों वह सब बात पहले से बात करनेवाले को समझा देते हैं । इसलिए चालू फोन में इतना बोलने का कम हो इतना टाईम भी कम बिगडे.. । यह बात उनके लिये साहजिक हो गई है ।

* * * * *

(7) इसी तरह जब ऐसे कोई कटोकटी के संयोगों में मोबाईल जैसे कोई साधन का उपयोग कराके बात पहुँचानी हो, तब इतना पक्का कि सामने कोई.. (स्वयं के ही पू. गुरूदेव श्री विगैरह) आचार्य भगवंत हो कि पदस्थ विगैरह कोई भी संयमी महात्मा हो तो भी कभी भी वंदना-सुख शाता या चातुर्मासिक विगैरह क्षमापनादि कोई भी फोर्मल व्यवहार की बात नहीं करनी.. एक शब्द भी एक्स्ट्रा नहीं । सिर्फ काम पूरती कम से कम शब्दों में ही पूरी करनी ।

और इसलिए ही - ऐसा तो बनता ही नहीं है कि - 'टपाल पार्सल कुरीयर भिजवाया है' अथवा तो 'भिजवा रहा हूँ' या फिर ऐसा कुछ 'मिल गया है' - इतनी जानकारी देने के लिये ही सिर्फ फोन कराते हैं । ईनशोर्ट ना छुटके ही बात करनी और वह भी 'कम से कम शब्दों में' नहीं पर कम से कम अक्षरों से पूरा करते..

ऐसे कोई श्रावक को भी कभी कुछ कहने की जरूर पडे तो 'धर्मलाभ' विगैरह कोई भी शब्द व्यवहार रूप से नहीं । सामने से आया हो तो वह संसारी ही खुद वंदना-सुखशाता कहे-पूछे तो भी एक भी जवाब खुद नहीं देते (बात करनेवाले व्यक्ति खुद के हिसाब से कह दे और निषेधकरने पर भी 2-4 शब्द खुद से ही जोडकर बोले वह बात अलग ।)

* * * * *

(8) कभी कोई मिलने आये या कोई बात के दौरान 'संसारी' सगे-संबंधी का

उल्लेख करने की जरूर पडे तब 'मेरे संसारी काका-मामा' विगैरह प्रयोग कभी नहीं करते.. परंतु 'संसारी-पिताजी के भाई' या 'माताजी के भाई' विगैरह रूप में एकान्तरित संबंधही बतायेंगे।

इसके पीछे इनकी विचारधारा स्पष्ट है - ''मुझे तो 'मेरे धर्मदाता, उपकारी' के रूप में सिर्फ इन दो व्यक्ति के साथ ही संसारीपन का संबंधहै। इसके सिवाय कोई भी व्यक्ति मेरे नहीं, पर इनके संबंधी हैं।''

''बने वहाँ तक स्नेहादि की सगाई को याद करते ही नहीं हैं।''यही उनका लक्ष्य।।

(9) विट्ठलगढ में पापडी वापरनी पडी.. वह अपवाद रूप था। पर तब पापडी का स्वाद लेना अनावश्यक था.. इसलिए तब उन्होंने पानी में भिगोकर वापरने के द्वारा यतना की.. यह स्पष्ट है।

* * * * *

(10) राजकोट - चातुर्मास परिवर्तन एक श्रावक के वहाँ करने के पश्चात् हमारा विहार उस वक्त नहीं होने के कारण हम पुनः उपाश्रय में आये। परिवर्तन के दिन भी हम श्रावक के यहाँ रूकते नहीं है (लघुनीति विगैरह बहुत प्रश्न होते हैं.. इसलिये)

स्वाभाविक है कि हम 120 दिन जिस उपाश्रय में जिस स्थान पर बैठे हुए उसी स्थान में बैठने का 121वें दिन को जमता है - जाने-अनजाने में उस स्थान पर थोडा-बहुत ममत्व हो जाता है।

पर हैमविजयजी ने खुद की जगह बदल दी। मैंने कारण पूछा, तब नम्रतापूर्वक जवाब दिया कि 'चातुर्मास पूरा हुआ' - अब उस जगह तो नहीं बैठ सकते हैं ना।' उनका विश्वास यह था कि - ''चातुर्मास पूर्ण हो, तो कारतक पूनम का तो विहार ही करना होता है। मानो कि यदि कारण सर ना हुआ, तो जगह बदल देनी चाहिए, **यह एक जयणा कहलाती है। इस तरह प्रभु का वचन मैं पालता हूँ।''**

(11) ऐसा शेषकाल में भी बनता है।

एक बार कहीं पर भी रूकने के बाद, एक दो महीने या फिर एक-दो वर्ष मेंणणण भविष्य में कभी भी जाना हुआ..

तब जितनी बार विहार कर-करके.. उसी संघ में या उसी उपाश्रय में हमको पुनः जाना हो तो उतनी बार हैमविजयजी की जगह अलग-अलग ही होती है।

जहाँ इस तरह पुनः जाते हैं, वहाँ की वातावरण तो पक्का ही रहता है।

और दूसरी-तीसरी बार या बार-बार जाने का होता हो तो सामान्य से एक मानसिक अपेक्षा..

- एक अभिगम खडा हो जाता है कि 'मुझे तो भाई यह जगह बराबर.. '

कोई दूसरे महात्मा वहाँ आकर बैठे हो, तो भी मन में एक बार तो कुछ-कुछ 'इष्ट की अप्राप्ति' से खडी होती 'अरति' हो जाती है । मुझे तो बहुत बार विहारधाम में भी ऐसा बन जाता है..

बहुत समय पहले जिस जगह बैठना हुआ हो.. उस ही जगह की तरफ दूसरी बार जब जाते हैं तब भी पैर उस ओर उठते हैं । ऐसा होना यह 'एक प्रकार का ममत्वभाव है । ऐसा सूचित होता है ।'

यह सब सूक्ष्म आर्तध्यान से दूर रहने के लिये ही इस मुनिवर ने एक नियम बना रखा है कि-

'एक की एक ही जगह repeat नहीं होनी चाहिए ।'

गत वर्ष ही हमको 'साबरमती-संघ' (अहमदाबाद) में बहुत बार जाना हुआ.. नूतन उपाश्रय में और बडे उपाश्रय में.. दोनों जगह तीन-चार तीन-चार बार रूकना हुआ..

तो हर वक्त हैमविजयजी का स्थान **बदला हुआ ही रहता है** - उसमें कोई फरक नहीं पडता है ।

पढाई चलती ही है.. इसलिए पूरे दिन प्रकाश की अपेक्षा रहती ही है, पर फिर भी उसमें, जितने.. बैठने के स्थान के लिए विकल्प निकल सकते हों.. वह सब विचार-विचार के भी एक ही बैठक आये-ऐसा तो नहीं ही होने देते..

जो ऐसा हो तो 'ममत्व भाव बंधता है ।' वह नहीं ही होना चाहिए । इस लिए ऐसी जागृति रखकर बचनेका पुरुषार्थ करते....... जगह बदलते रहते ।

* * * * *

(12) संघट्टा के जोग चले तब.. 'ओघा छूट ना जाये इसके लिये उसकी दसीयाँ कमर में फिट कर देनी चाहिए' - ऐसी सूचना नये-नये जोगीयों को देते रहते हैं । यदि ऐसा ना करे तो कभी भी बेध्यान होकर ओधा छूट जाये तो 'सब जाता है ।'

.. यह हुआ एक अपवाद क्योंकि

रजोहरण रखने की ऐसे तो यह विधिनहीं ही है, उसमें सिर्फ कमर के उपर लटकता रहे और उपर का भाग बगल में ना हो तो कैसा लगे ।

इसलिए, इस महात्मा ने दो या तीन जोग तक तो ऐसा ही किया होगा कि उपर के दांडीवाले भाग को पकड के रखकर भी सेफ्टी के लिये 4-5 दसी सिर्फ कमर में घुसा के रखते हैं। बाद में तो लगा कि यह तो अप्रमत्तता की कमी कहलाती है..

इसलिये बंद किया। संघट्टा लेकर भी सामान्य पद्धति से ही ओधे को संभालते हैं यह तो बात हुई जोग की।

परंतु इसके बाद भी, इस तरह ओधे को कमर में घुसाकर फ्री होने की अनुकूलता का पीछे से कभी उपयोग नहीं किया।

लूणा-कपडा सूखाने हों तब भी नीचे झुककर जमीन पूंजकर (प्रमार्जना) करके जमीन पर ही ओधा रस देना..

पानी को छानते वक्त भी इस तरह ओधे को साईड पर ही रखकर काम करना..
कभी.. बडी मांडली में भी गोचरी निकालनी हों (सभी को देनी हो) तब भले दोनों हाथ गोचरीवाले हो.. फिर भी, ओधे को बराबर बगल में दबाकर रखकर ही सब कार्य करना.. और अंत में दूसरों की सहाय से हाथ धो लेते थे..

'मांडली साफ' (पोंछा लगाना हों) तब भी ओधा गोदी में रखकर उसे गंदा होने से बचा लेते.. पर कमर में फीट करने की बात तो कभी भी नहीं.)

..इसका नाम 'अपवाद सिर्फ अपवाद में ही।'

उपलक्षण के वेत्ता

(1) ' वडील / विद्यागुरूश्री / स्वगुरूवर्य / प्राधूर्णक बाहर से पधारे तब खडे होकर दांडा काम्बली लेने, उनके साथ बात करते नजदीक जाना, खडे होना वे खडे हों तो स्वयं बैठते नहीं हैं ' विगैरह विगैरह प्रकार का विनय प्रायः प्रचलित ही है । वह तो पालते ही हैं उसमें कोई उल्लेख की जरूरत नहीं है ।

पर उपलक्षण से वडील विगैरह के साथ देरासर, ज्ञानभंडार, अन्य वस्ती में वंदनादि के लिए, कभी गृहस्थों के घर में प्रतिबोधादि के लिये जाना पडे, तब भी वहाँ नजदीक पहुँचते ही दांडा हाथ में ले लेना, बराबर पूंजकर योग्य स्थान में रख देना, आसन स्वयं ही रखते हैं.. विगैरह विगैरह साहजिक है ।

* * * * *

(2) बैठते वक्त घुटने के पीछे पूँजने की विधियहाँ बताई है, दूसरा, खमासमणा देते भी संडासे के भागों को पूंजने का आता है । उसका अर्थ यह हुआ कि - ''कभी भी अवयवों को मोडना हो तो पूँजना..'' ऐसा शास्त्रकारों को अभिप्रेत है..

बस, इस तरह उपलक्षण को पकडकर चाहे तब कोई भी कारण से पैरों को मोडते हैं तब फीक्स पूंजकर ही मोडते हैं ।

चालु क्रिया में मुहपत्ति पडिलेहण के लिए बैठते समय..

थोय के बाद नमुत्थुणं के लिए बैठते समय..

अब्मुट्ठिओं के लिये बैठते समय..

'पगाम सिज्जा' के लिये बैठते समय..

आदेश माँगकर चैत्यवंदन के लिए बैठते समय..

.. ऐसा जब भी खडे रहकर उभडक या घूंटने को टिकाकर या घुटना उपर रखकर बैठने में आये.. तब फीक्स संडासे की विधिआ ही जाती है !

हमारी भाषा ने उनको 'प्राज्ञ' कहते हैं.. ''उपलक्षणग्राहकत्वम्-प्राज्ञत्वकम्''

* * * * *

(3) श्रावक गंभारे में प्रवेश करते हैं उसके पहले मुखकोश बांधना जरूरी है -

यह हुई देवाशातनावारण हेतु एक विधि..

उसका कारण हम ऐसा जानते ही हैं कि, अवग्रह के अंदर जाने के बाद अच्छवासादि से अल्पतम आशातना भी नहीं होनी चाहिए विगैरह इसलिए अब यह महात्मा उपलक्षण पकडकर क्या करते हैं ? वह देखो ।

अमुक घर देरासर या फिर संघ मंदिरों में भी स्नात्र पूजादि के लिये या उमर-कम्मर की तकलीफवालों को उपर चढना न पडे उसके लिये साईड में एक या अधिक प्रभुश्री प्रतिष्ठित किये हुए हों, वहाँ प्रदक्षिणा देनी हो तो एकदम ही नजदीक जाकर, नजदीक रहकर ही प्रदक्षिणा देने की हो..

उदा. से अहमदाबाद में श्री नेमिनाथ भ. (जैन सोसा.), श्री नाकोडा पार्श्वनाथ भ. (साबरमती), श्री वासुपूज्य स्वामी (महावीर विद्यालय), विगैरह

तो ऐसे स्थानों में नजदीक जाने से पहले नाक-मुख के उपर मुहपत्ती रखकर ही आगे जाकर प्रदक्षिणा देते हैं ।

* * * * *

(4) त्रिफलादि दवा-मलम-बाम-जैसी औषधवर्ग की वस्तु हो या पक्का नमक-सूंठ जैसी कोई आहार की या स्वादिष्ट वस्तु हो उन सभी की संनिधिरंखने में (रात को अपने पास रखने में) रात्रिभोजन व्रत में अतिचार लगता है । यह तो प्रसिद्ध ही है ।

पर उपलक्षण लगाकर यह महात्मा चूनावाला पानी होता है उसमें भी यह संनिधिदोष लगने से दिन में वडीनीति या लूणा निकालने के लिये पानी लेना हो तो चालू-पानी ही वापरते हैं । चूना में निकाला हुआ पानी सुबह स्थापनाजी पडिलेहण करने से पहले हाथ धोने के लिये लेना पडता है, वह भी अगले दिन निकाला हुआ हो वही लेना, जिससे 1 रात की ही संनिधिका दोष लगता है ।

खुद 2/3 महात्मा हो तो तब तो पानी लाते हैं तो इस तरह ही कि 1/2 टोक्सी जितना ही चूना में निकालने का हो और सुबह पात्रा पोरिसी तक तो प्राय: उपयोग हो ही जाता है । वाषक काप निकालते हैं तब उसमें भी चूना का पानी तो नहीं ही ।

(उसमें अपवाद इतना समझना कि..)

(क) जब लूणे सामुहिक निकालने हों तब दूसरे निकाले और चूने के पानी का उपयोग करे उसमें इनका भाग होने से यह दोष लगता ही है और

(ख) साथ में अधिक महात्मा हो उन सभी की मान्यता, मानसिकता एक जैसी नहीं होती इसलिये चूने का पानी बहुत निकलता हो तब, और खुद को भी लूणे

निकालने की भक्ति आई हो (सौंपी हो) तो उस वक्त वही पानी वापर लेते हैं। नहीं तो वह परठने का हो तो दोष बढ जाता है ना ? वैसे,

(ग) खुद के काप में ताजा पानी लावे और यहाँ अधिक पानी को पूरा करने का टाले, तो परठने का प्रोब्लम होता है, ऐसा जहाँ भी होता है वहाँ खुद की जिद छोडते हैं, पर इन सभी की खास आलोचना तो ले ही लेंगे।

* * * * *

(5) 'गोचरी, उपधिइत्यादि में' जिस तरह आधाकर्मी दोषदुष्ट का वर्जन है वैसे उपलक्षण से अन्य जगह भी लगते हैं ना ?

यह इस तरह लगाते हैं.. हम जहाँ इस वक्त चातुर्मास हेतु रहे हैं वहाँ उपाश्रय के उपर के भाग में एक तरफ पार्टीशन जैसा बनाकर रूम बनाने में आई है।

उनको पता था कि 'इस वक्त (एक) विशिष्ट-वरिष्ठ आचार्यदेवेश पू. गच्छाधिपति श्रीमद् की अनुकूलता हेतु बनाने में आई थी। पूज्यपादश्री के लिये अपवाद आवश्यक होने से उनको कल्प्य रूप से घट सकती है पर मुझे तो इसकी बिल्कुल जरूरत नहीं है।'

इसलिये वे इस केबीन का बिल्कुल उपयोग नहीं करते, बैठने का स्थान तो अन्यत्र ही रखते हैं पर वह पार्टीशन प्लायवुड का टेका मिले इस तरह भी खुद का कोई दांडा, दंडासन विगैरह उपाधिया सर्वसाधारण घडे-परात (थाल) विगैरह औपग्रहिक उपकरणों को भी नहीं रखते। क्योंकि वह स्पेश्यल कराया हुआ दोष एक्स्ट्रा में नहीं लगना चाहिए। वैसे तो पूरा उपाश्रय का हॉल साधु भ.के लिये ही बनाया हुआ होता है ना ! इसलिये उसका तो दोष (मिश्र दोष भी) लगता ही है, पर जितना अधिक उसका उपयोग करें उतना दोष बढता है, वह टालने के लिये यतना के परिणामों को संभालते हैं (अंदर के भाग में बैठना पडे तो बैठते भी हैं पर वह अन्य स्थानाभावादि के कारणों से ही ! न ही की गुप्तता के लाभों को प्राप्त करने हेतु..)

* * * * *

(6) वैसे, वि.सं. 2069 का चातुर्मास हमारा जहाँ था, वहाँ भी उपाश्रय में नीचे के भाग में साईड में एक छोटी रूम थी। पहले उन्होंने एकांत का लाभ लेने के लिए वहाँ पर ही आसन रखने का विचार किया, पर 2 दिन में ही तुरंत स्वयं को ध्यान आया। इसलिये सभी उपधि-पात्रा बाहर लेकर आये और पूरा चौमासा बाहर के हॉल में ही रहकर बिताया।

* * * * *

(7) एक जगह गरमी के समय में गरमी चालू थी, उस अरसे में वहाँ रुकना हुआ, वहाँ के उपाश्रय में नीचे आयंबिल खाता और उपर के माले पर बहुत साधु भगवंत रुके हुए थे । उस हॉल के ऊपर ही सीधी छत थी और छत में शेड कराया था इसलिये बहुत महात्मा रात को उपर ही संथारा करते ।

इस महात्मा को भी 1 बार तो विचार आ गया होगा कि मैं भी टेरेस के उपर चला जाऊँ तो अच्छा रहेगा, 2 बार चढना उतरना (लघुनीति के लिये) कम होगी (उनको गरमी की दिक्कत नहीं थी), पर रात को 1-2 बार मात्रु जाना हों तो उपर जाना पडता है उसमें योग-वृद्धि होती है । इतनी निवृत्तिरूप गुप्ति का पालन कम होता है । इसलिये उससे अच्छा तो ऊपर ही संथारा कर लूँ तो ठीक रहेगा यह गणित था ।)

परंतु उसके बाद स्वयं ही विचार में चढे । पूरा दिन तो नीचे हॉल में रहते हैं उसका दोष तो सिर पर लिया । अब यह जो शेड है, वह एक्स्ट्रा में डलवाया है उसका उपभोग करते इतनी विराधानुमति का पाप भी लगेगा, यह दोष क्यूं चलाना ?

इसलिए उपर ले गये संथारे के साथ (मातरा परढवकर) पुनः नीचे लेकर आये

साथ में दूसरा भी यह कि उपर तक जाने के लिए एक्स्ट्रा-एसेसरी में डलवाये शेड की अनुमोदना ना करनी हों तो काम्बली ओढकर ही जाना चाहिए ।

बस ऐसा विचार करके पीछे से जितनी बार काल के समय में उपर जाते उस वक्त काम्बली ओढकर ही जाते । इसलिए मानो शेड ही नहीं है इस तरह समझकर प्रवृत्ति करते हैं ।

No surplus surcharges ! मुख्य उपाश्रय की दिवाल । छत विगैरह तो शायद मिश्र दोष में भी आ जाये पर यह सब रूम, वाडा, शेड विगैरह विगैरह तो सिर्फ साधु भ. के लिये ही होते हैं ना !

इसलिये यह दोष से जितना बच सके उतना बचे.. बस इसका नाम यतना परिणाम..

* * * * *

(8) अहमदाबाद में साबरमती विस्तार में और शांतिवन के तरफ डामर के रास्तों के ऊपर सफेद रंग के पट्टे कराने में आये हैं । बस खास इसके लिये होते हैं कि गरमी में दोपहर के समय साधु-साध्वीजी भगवंत को गोचरी के वक्त प्रतिकूलता कम हो और खुले पैर ही लेट पूजा करने वाले श्रमणोपासक वर्ग को भी गरमी कम लगे

इसलिए **'मिश्रकोटी में इसका दोष गिना जाता है'** यह विचार के यह

महात्मा जब भी रास्ते से पसार होते हैं तब इसके उपर नहीं ही चला जाता इसका पूरा ध्यान रखकर वर्जन का अभिप्राय जागृत रखते हैं। कहाँ 1/2 कदम रखने पडे, तो वह भी ट्राफिक या मोड विगैरह कारणों से ही, पर उपयोग जाने से नहीं।

* * * * *

(9) रात को दंडासन से बराबर प्रमार्जना करते-करते ही चलना पडता है। क्यों ? मुख्यतया त्रसविराधना से बचने के लिये।

- यहाँ भी उपलक्षण लगता है !

(ए) यह महात्मा गोचरी जाते हैं तब बहुत बिल्डींगों में शुरुआत में 1-2-4 माले तक खास्सा अंधेरा होता है तब तुरंत दोनों तरपनी (चेतना साथ में हों तो भी) एक हाथ में लेकर तुरंत ओघा हाथ में लेकर पूंजते-पूंजते ही उपर चढते है .. ! और बाद में नीचे आते तो भरी हुई गोचरी के साथ आना होता है इसलिये अब तकलीफ तो पडती है पर फिर भी जिसे रास्ता निकालना हो उसे थोडे तकलीफ होती है ? ऊपर के माले में एक जगह किसी को 1 तरपणी सौंप देते हैं, एक बार नीचे उतर जाते हैं वहाँ कोई चौकीदार जैसे को पकडकर उसे एक तरपणी सौंप देते हैं, पुनः उपर जाकर आते हैं इसलिये कार्य पूरा, पूंजने का कार्य दोनों टाईम - चढते-उतरते संभाल लेते हैं।

(बी) गोचरी के सिवाय कभी होस्पिटल इत्यादि कार्य में इस तरह जाना पडे तब तो प्रमार्जना करनी कितनी सरल बनती है। हाथ फ्री ही होते हैं इसलिये जैसे जरूर पडे कि तुरंत प्रमार्जनापूर्वक ही एक-एक कदम रखते हैं।

(सी) इस तरह बहुत बार मंदिर की भमती में भी 'अच्क्खु विषय हुओ' होता है। नीचे कोई जंतु इत्यादि हो तो नहीं दिखते हैं ऐसा बनता है ! तभी भी फिक्स उनके दो हाथ में ओघा होता है वो एक हाथ में आ जाता है और पूजते-पूजते प्रदक्षिणा देते हैं।

* * * * *

(9) अंधेरे में स्थंडिल-मात्रु के लिए भी खुले में चलना होता है, वहाँ त्रस की संभावना होती है तो अंत तक दंडासन का उपयोग करते ही हैं !

* * * * *

(10) ' आउत्तवाणय ' के दिनों में श्रावकों को उपधान में कोई कडक वस्तु नहीं चलती है। इसलिए इन्होंने उपलक्षण से यह पकड लिया कि उत्कृष्ट मार्ग से साधुजीवन में कभी भी कोई भी कडक वस्तु नहीं चलती है। वही उचित है।

बस ! इस कारण से ही कोई भी कडक आईटम वापरते नहीं हैं। सभी ही नमकीन, ममरा, पापड-खीचीयाँ तो आजीवन त्याग पहले से ही थे, अमुक समय के

बाद (आज से 9-10 साल पहले ही) कडक तरीके से जो भी आता है वह सब भी बंद

सिर्फ एक खाखरे की छूट कितने समय से रखी है। आयंबिल में रोटी चावल ना मिले या कम मिले तो फिर लेना पडता है इत्यादि कारण से। खाखरे में ढीले पडे। पर वह भी कडक तो नहीं। जब भी खाखरा मिलता हैं, तब उसे पानी में भिगोकर बराबर नरम हो जाये और वापरने की आवाज नहीं आये उस तरह ही !

हा ! कभी निर्दोष पानी नहीं मिलने से पानी का विकल्प खुला ना हो तो थोडे बहुत चावल या ऐसा जो भी दूसरा कुछ मिला हो उसमें बराबर मिक्स करने के बाद थोडी देर रखने के बाद नरम हो जाये बाद में ही वापरेंगे !

निःसंगी मुनिवर

(1) उनसे पास एक भी सगे-संबंधी का एड्रेस..

अथवा तो, भक्त तरीके से गिना जाये ऐसे कोई भी एक व्यक्ति का एड्रेस ऐसे कोई एड्रेस लिखे हुए नहीं है अरे ! एड्रेस तो दूर की बात है, पर..

फोन नं.मोबाइल नं. भी लिखा हुआ नहीं मिलता है, कोई ऐसा नंबर याद रख लिया हो ऐसा भी नहीं !!

नहीं उनके पास खुद के (?) माँ-बाप का नंबर !

नहीं उनके पास खुद के (?) सगे भाई का नंबर !

- कभी भी कार्य आ पडे तो वाया-वाया करके कोन्टेक्ट कराते हैं। दो-तीन फोन एक्स्ट्रा कराने पडे.. तो वह भी अपवादिक कहे जाते हैं। उसमें भी ऐसी यतना का परिणाम होने से और कारणों से ही ऐसा कोन्टेक्ट करने का होने से नहिवत् दोष लगता है।

.. उसके बदले हम तो हमेशा के लिये डायरी में या नोट में 5-7 या 40-50 फोन नंबर रखे तो बारह मास वह फोन कराने रूपी विराधना का बीज पडा रहता है.. ऐसा होते अनकान्शीयस माईन्ड में उन साधनों का उपयोग करने की करानेकी तैयारी सतत चालू ही गिनी जाती है।

.. ऐसी सब दृढ विचारधारा को लेकर ही, उनका यह आचरण है। और एकबार ऐसा भी बना सही। उनके संसारी पिताजी को कोन्टेक्ट करने का कोई जरूरी प्रयोजन आ ही गया। तब कोई दूसरे के पास से उनका नंबर लेकर मैसेज पहुँचाया (उसमें एक फोन बढा यह बात निश्चित ! पर उसके सामने पूरी जिंदगी का परिग्रह व्रत अखंड रहा वह ज्यादा महव का कहलाता है।)

* * * * *

(2) नहीं उनके पास छोटा पोटला या छोटी पोटली !

(हा ! एक-दो बुक जितना हाथ से लिखा हुआ.. विगैरह उनके गुरूदेवश्री के बाक्स में उन्होंने वर्षों पहले रखा था.. वह परठना बाकी है। वहाँ जायेंगे तब उसकी बात!!)

* * * * *

(3) महाराज साहेब कौन से गाँव के हो ? ऐसा कोई भाविक खुद की मातृभूमि के गर्व से पूछनेवाले निकलते हैं ।

' केयु गोम आपरू ! ' ऐसा कोई राजस्थानी व्यक्ति मारवाडी भाषा में पूछो ! इस विषय में...... जो कि बहुतों को अनुभव होगा कि श्रावकवर्ग खुद की सामाजिक भावना या फि र कर्मभूमि की ममता के कारण सामने से ऐसे प्रश्न पूछही लेते हैं !

अलग-अलग शब्दों में जब ऐसे कोई प्रश्न पूछ लेते हैं तो यह महात्मा को सहन नहीं होता और मानो कि उनका प्रतिकार ही निकल जाता है ..!

उदा. से 'गाँव का तो काम क्या है ? पर मेरा एक कार्य करोगे ?

मुझे यह पूछ लिया यह अच्छा किया । पर अब भविष्य में कोई भी साधु-साध्वीजी भगवंत को ऐसा पूछना नहीं.. ....। मुश्किल से तो गाँव और समाज को छोडते हैं ! छोड देने के बाद भी मन में से निकालना सरल नहीं है ! और उसमें, तुम्हारे जैसे याद कराये इसलिये उसके पीछे पूरी सीरीयल चलती है । सब पुराना याद आता है । यह क्या योग्य गिना जाता है ? तुम्हारा गाँव क्या हमेशा के लिये तुम्हारा है ? आप भी समझते ही हो कि सब छोडकर निकलना पडता है तो फिर तुम्हारा भी गाँव कहलाता है ? नहीं? तो हमारा तो क्या कहना ?' ऐसे शब्दों से भी समझाते हैं । उनको गोचरी चर्या में आज तक 20-25 बार तो कम से कम हुआ होगा ।

कभी बहुत टाईम बिगाडना उचित ना लगे - या फिर कोई अजैन व्यक्ति ने कभी पूछ लिया हो.. ऐसे प्रसंगों में 'हमारा कोई गाँव नहीं है ? सब ही छोड देने के बाद कुछ याद नहीं करना ! आज सौराष्ट्र में है तो सोरठी और मारवाड में हो तो मारवाडी !'

ऐसा छोटा जवाब देकर भी पूछने वाले को 'सम्यग्दर्शन' दे देते हैं ! हाँ.. यह बात सच्ची कि ऐसा सब लंबा समझाने के लिए बैठना.. उचित थोडे गिना जाता है ? दूसरा कभी ऐसा करने से भी श्रावकजन नजदीक आये, आगे बढे, वह भी संभव है ! पर इनकी रीत से यह इस तरह ही विचारते हैं कि कोई गीतार्थ महापुरुष की बात पूरी अलग है, पर मुझे क्यों इसका उल्लेख मेरे मुख से करना ।

* * * * *

(4) बहुत बार गोचरी विगैरह प्रसंग में कोई ऐसा भी पूछे, ''साहेब ! कौन से समुदाय के ?''

तभी भी वे पहले तो सीधा यही कह देते हैं कि 'भगवान महावीर स्वामी के तो हैं ही !' फिर कहने जैसा लगे तो कह भी देते हैं..

'कौन से समुदाय के होंगे तो वहोराओगे ?' ऐसा कहकर समझाते हैं कि सिर्फ

साधु-साध्वीजी इतना देखकर पूरे सद्भाव से भक्ति करो, उसमें ही उत्कृष्ट लाभ मिलेगा इत्यादि..

'समुदाय के भेद को आगे लाना वह एकदम अयोग्य है' - ऐसा बताने के लिए ही ऐसा विचित्र जवाब दे देते हैं।

जो कि, बहुत बार तो उनकी गोचरी इत्यादि की गवेषणा, वेषभूषा, देदार देखकर ही.. पूछनेवाले सीधे उनके ही पू. प्रदादा गुरूदेवश्री के नाम से ही पूछते हैं कि 'साहेब!.. सूरि के हो'

तभी भी ऐसा पूछने का कारण धीरे से पूछ लेते हैं। 'संयम की चुस्तता विगैरह कारणों को जानकर अंदर से गर्व का अनुभव करते भी सामने के व्यक्ति को इतना तो सूचना कर ही देते हैं कि तुम्हारी बात सच्ची है, पर 'बहुरत्ना-वसुंधरा' - यह भूलते नहीं हा !'

जिस तरह 'संसारी' प्रति की ममता मूल में से निकालनी आवश्यक है, नहीं तो संयम में बाधक बनती है.. उस तरह 'संयम-परिवार' के प्रति भी.. संकुचितता की नींव के ऊपर का ममत्वभाव को नुकसानकारक ही बनता है !
यह अभिगम उनके जवाबों में स्पष्टरूप से प्रतीत हो रहा है !

परिषह के विजेता

(1) इस वर्ष ही 250 से उपर साध्वीजी के गुरू - 'प्रवतनीश्रीजी के दीक्षा दिन को यह निमित्त ग्रहण करके स्वयं को भाव होते उन्होंने दो घडी चोविहार करने का संकल्प किया और अमल भी किया।'

वैसे तो उनके उपकारी साध्वीजी भगवंत की प्रेरणा से पहले भी बर्षों से दो घडी चौविहार तो करते ही थे, पर गत वर्ष से अमुक कारणों से वह छूट गया था और मुझे पता है कि वे अंत तक पानी वापरते थे (भले कभी-कभी ही'', पर हमको वह विचित्र लगता) इसलिये ही दो घडी पहले और उसमें भी जेठ-अषाढ की भयंकर गरमी में उसमें भी अहमदाबाद की 45 - 50 डिग्री में दो घडी के पहले पानी का त्याग उनके लिए मुझे असंभव लगता था। पर वह उन्होंने कर दिखाया।

सुकृतानुमोदन करना मेरा फर्ज है। इसलिये 'यह लिख रहा हूँ।'
इनको 'अच्छा नहीं लगेगा', यह पता है.. फिर भी।

यदि यह विचार करके रुक जाऊँ तो पूरी यह आत्मकथा ही तैयार नहीं हो सकती!

उनको यह सब लेखन हो और छपें यह सब अच्छा तो नहीं ही लगता है?

* * * * *

(2) उनकी हरेक कार्य में जबरदस्त सूक्ष्मता, इसलिये ही उनको हरेक कार्य में टाईम बहुत लगता है। गोचरी वहोरने में भी बहुत बहुत गवेषणा के कारण से बहुत समय लगता है...।

उसमें बहुत बार... मांडली में अमुक तपस्वी, ग्लान, वडील विगैरह हो तो उन सभी के लिये प्रायोग्य द्रव्यों की प्राप्ति हेतु फिरने का लोभ यह मुनि रोक नहीं सकते हैं.. इससे हमेशा के लिये देरी होती है।

गोचरी वापरने में एक एक वस्तु बराबर देखकर वापरने में टाइम लगता है।

वापरने के बाद पात्रे इतनी सावधानी से धोते हैं कि छोटा सा भी दाग या चीकास (घी, तेल) उनके धोये, पोंछे हुए पात्रे नहीं होते। पर ऐसा करने में पात्रे धोने में समय बहुत लगता है।

जो गोचरी के बाद का काजा निकालना हो, तो उसमें बडा दाना तो ठीक पर

छोटा भी दाना नहीं रहता ।

- इन सभी छोटी-छोटी बातों में इनका समय बहुत जाता है । जो कि यह उनकी अप्रमत्तता ही है, पर मुझे दुःख होता है । 'इस महात्मा ने पढने के लिए मेरी निश्रा स्वीकारी है, इनका अभ्यास नहीं होगा तो कैसे चलेगा ।'

इसलिये मैं कभी कभी उनको उपालंभ देता था ।

अलबत्ता इनका अभ्यास वैसे तो बहुत अच्छा हुआ है, अच्छा हो रहा है, पर इनकी जो बुद्धिशक्ति है, इनकी जो सूक्ष्मतम परिणति है, उस अपेक्षा से तो उनका अभ्यास कम ही होता होगा, इसलिये मुझे इसका बहुत अफसोस था ।

एकदम सच्चे भाव से.. बिलकुल अतिशयोक्ति के बिना.. 100% सच्ची बात करूँ तो यह मुनिवर मुझे शास्त्रों के रहस्य खोलने में बहुत-बहुत उपयोगी हुए हैं, पर निद्रा आये, उपयोग ना रहे या दूसरी बातों में ध्यान ज्यादा दे.. इसलिये उनकी तीव्र सूक्ष्म बुद्धि का लाभ मैं नहीं ले सकता हूँ... इसलिये मैं उनको उपालंभ दे बैठता । जब कि दोनों विषय में वे गलत नहीं थे ।

- नींद आती है, कर्म परेशान करे, उसमें इनका क्या दोष ?

- संयम की सूक्ष्मतम संभाल करनी हो, तो उसमें समय नहीं देखा जाता । पर मेरी भावना आज भी यही कि उनकी प्रज्ञा यदि मुझे सहायक बने, तो हजारों संयमीओं को शास्त्रपंक्ति के रहस्यों को हम दे सकते हैं ।

बहुत बार ऐसा हुआ है कि - मैंने जो अर्थ किया हो, वह अर्थ उनकी विनयपूर्वक की दलील सुनने के बाद, मुझे बदलना पडा है, अर्थात् मैं गलत साबित हुआ हूँ ।

अब इन दो कारणों से जब भी, जो भी उपालंभ दिये हैं, तब उन्होंने कभी भी बहुमान भाव कम नहीं किया ।

आज सच्चे गुरू भी स्वयं के शिष्य को नम्र-बनकर भी भूल दिखाने के लिये संकोच का अनुभव करते हैं । और यहाँ तो मैं टेम्पररी विद्यागुरू और फिर भी गुस्सा होकर सभी के बीच में भूल नहीं होने पर भी उपालंभ देता हूँ और ऐसा होने पर भी वे गौतम जैसी भावधारा को टिका सकते हैं । वह इस काल में 100% आश्चर्य ही है ।

* * * * *

(3) ताजा ही अनुभव, मैं ऐसे तो तन-मन से मजबूत.. फिर भी अहमदाबाद में गरमी में 11.30 के बाद गोचरी जाने में मुझे तकलीफ पडती है । फटाफट चलना पडता है ।

पर आश्चर्य.. ऐसी ही गरमी में.. एक बजे.. कभी दो बजे भी गोचरी के लिए

बिन्दास्त खुल्ले पैर आधा-एक कि.मी. तक चल सकते हैं।

- 12.30 के बाद भी लगातार आधा-पौना घंटे तक भी ऐसी अहमदाबाद की वैशाख जेठ महीने की गरमी में डामर के रास्ते पर चलकर मांडली का / खुद का जरूरी कार्य करने जाते-आते मैंने बहुत बार देखा है।

* * * * *

(4) चाहे जितने भी मच्छर हो, मच्छरदानी का उपयोग नहीं करते।

मुझे अनुभव है कि शियानेमें ठंड के कारण बराबर ओढके मै सोता हुं, तो मच्छरो मुझे कांटते नही, पर मच्छरो का 'गण गण आवाज भी असहय बने। ये मेरी नींद उडा ही दे।' इस लिये ही मै - हम शियाला मे भी मच्छरदानीका उपयोग करते है।

उसमें भी भावना यही कि.. पर्याप्त निंद होने से जो आराम मिलेगा तो उसके बाद का पूरे दिन स्वाध्याय की धून अच्छी तरह चलेगी.. इसलिये संयम योगों की अहानि के लक्ष्य से हम तो वायुकायादि की सामान्य विराधना को भी 'अपवाद' समझकर स्वीकारते हैं। पर, यह मुनिवर को तो उपसर्गमय जीवन ही जीना है !!

उसमें भी हमारा अनुभव ऐसा है कि तपोवन के बाहर के मच्छर बेटे हैं और तपोवन के अंदर के मच्छर पिता हैं (अर्थात् वहाँ बडे मच्छर होते हैं।) इसलिये तपोवन में मच्छरों की पीडा उस उस ऋतु में विशेष से रहती है।

उसमें यदि गरमी हो, तो भारे मुश्किल ! कपडा ओढ ना सके, ओढे तो सख्त गरमी लगे, और खुल्ले शरीर सोने में मच्छर काटते हैं।

अब अंतिम तीन वर्षों से मैंने देखा है, यह महात्मा मच्छरों के भयंकर उपद्रवों को सहन कर रहे हैं, पर मच्छरदानी का उपयोग करने का विचार भी इनकों नहीं आया। उनकी मुखाकृति पर कभी भी मच्छरों की पीडा की फरियाद करती नहीं दिखती है।

और अप्रमत्तता भी कैसी कि यदि नींद में मच्छर मर गये हों.. निंद में खुजली करने से मच्छरों का घात हुआ हो ऐसा भी नहीं बनता !

* * * * *

(5) 'बाप रे बाप ! आज तो बहुत ठंडी है.. !'

'अभी दो दिन से बहुत गरमी है,'

'एक सप्ताह से तो बहुत ही बाफ (बफारा) है।'

'कल से आज का वातावरण फ्रेश लग रहा है।'

'यहाँ आवाज कितनी है.. थक गये !'

'हे भगवान ! आज तो यह लंबा विहार करके थक गये !'

'यह छोटी जगह किस तरह चलेगी ?'

'यह उपाश्रय तो कितना पुराना है, चारों तरफ धूल ही धूल दिख रही है!'

''मच्छरों ने तो पूरी रात हैरान कर दिया, थोडी भी निंद नहीं हुई ।' ऐसी तो ढेर सारी फरियाद वैसी वैसी परिस्थिति में मेरे या दूसरों के मुँह से निकली है । पर मैंने बराबर ध्यान दिया तो मुझे ख्याल आया कि, ''इन्होंने ऐसी एक भी फरियाद आज तक मुँह से निकाली नहीं है । इतना ही नहीं, मेरी फरियाद में कभी हाँ भी नहीं कहा है

ऐसी फरियाद करनी वह **असहिष्णुता** है, उसमें यदि हाँ कहे तो असहिष्णुता बढती ही है ना ? यह दोष वे कभी नहीं लेते । चाहे जो भी हो जाये, न तो वे मुँह से कोई भी फरियाद करे, न तो किसी की फरियाद को पोषण दे (हाँ ! वे अशाताग्रस्त महात्माओं को शाता देने के लिय, वैयावच्च करने के लिए हमेशा तत्पर ।)''

* * * * *

(6) गरमी में उनके पेट इत्यादि के ऊपर सैकडों कोडीयाँ देखकर मैंने चिंता व्यक्त की, तो कहते हैं मुझे 5 साल से हर गरमी में ऐसा होता ही है उसमें चातुर्मास चालु होगा, इसलिए अपने आप ठीक हो जायेगी, दवा की जरूरत नहीं पडती ।

मुझे क्या कहना ? कोई भी सामान्य शारीरिक तकलीफ रोग के लिये चिकित्सा नहीं कराते हैं । सब सहन कर लेते हैं ।

.. जो कि उनको जो यहं गरमी निकलती है उसे तो मैं सामान्य भी कैसे कह सकता हूँ ? क्योंकि सिर से लेकर पैर के पंजे तक पूरे शरीर में लाल-लाल फोडे (बडे-बडे) फोडीयाँ जैसा हो जाता है उसमें भी पेट से लेकर घुटने तक के भाग में तो इतना प्रकोप होता है कि चमडी का रंग तो रहता ही नहीं है । 80-90% जितना तो पूरा लाल लाल हो जाता है । ऐसी परिस्थति में दवा कराने की बात तो नहीं पर आयंबिल चलते हों या पारणे चलते हों तो भी ठंडक के लिये उपचार, त्रिफला, गिल्कोयासत्व, वरीयाली का पानी, विगैरह कुछ नहीं लेते । मानो रक्तविकारादि की कोई असर ही नहीं।

उसमें भी उस समय में तो उनके कपडे भी एकदम मैले होने के कारण पूरे दिन भीगे-भीगे रहते हैं । और उनको पसीना भी ज्यादा होता है और उसमें भी गरमी के महीने....

यह सब एक साथ होने से रात-दिन जलन तो बहुत होती है उन्होंने एक बार कबूल किया था, बैठे-बैठे या जब क्रिया चलती है तब बहुत हैरान होते हैं । पर फिर

भी कोई भी दवा नहीं, उपचार भी नहीं और काप निकालने की बात भी नहीं । ऐसी हालत में उन्होंने दो-ढाई महीने निकाले.. मेरी नजर के सामने ही !

* * * * *

(7) मेरे संसारी सगे भाई विगैरह मिलने आये थे उन्होंने मुझे कहा था कि महाराज साहेब ! आप भले मेरे सगे भाई महाराज साहेब ! पर मुझे तो आप से अधिक इनका संयम अच्छा लगता है ।

देखो, आपके पैर में मैल नहीं दिखता

उनके पैरों के तलिये में तो ठीक, पर ऊपर के भाग में रीतसर मैल जमा है । आप देखो तो जरा, और फिर भी उन्होंने कभी भी मैल नहीं निकाला है । तो ही इतना मैल जमा हुआ है ।

मैंने कहा, ''देखो मैं कभी भी पैर धोता नहीं हूँ यह बात पक्की !'' दूसरी ओर हैमविजयजी जान-बूझकर धूल में कीचड में चलकर पैरों को मैला नहीं करते हैं । यह बात भी पक्की !

फिर भी मेरे पैर तो साफ है । उनके एकदम मैले है । उसका कारण मुझे भी पता नहीं है ।

जो कि यह लिखते वक्त विचार कर रहा हूँ, तो मुझे कारण बराबर ध्यान में आ रहा है ।

मैं गरमी में पसीना पोंछता हूँ तो उसके साथ मैल भी निकल जाता है और आपको आश्चर्य होगा, पर यह हकीकत है कि हैमविजयजी कभी पसीना पोंछते ही नहीं है ।

हा ! ऐसा है कि, विहार में उनको इतना पसीना होता है कि गीले कपडे को निचोडने में आये, तो उसमें से पसीने की बूंदें नहीं पर रीतसर पानी ही निकलता है ! (और यह सिर्फ बात नहीं है मैंने नजरोनजर देखा है ।) पर कभी वे पसीना कपडे से पोंछते नहीं हैं, पवन (हवा) से अपने आप पसीना सूख जाता है कदाचित् कपडा पसीने पर दबाते होंगे । जिसने कपडे में पसीना आ जाये । पर घिसकर पसीना पोंछते तो नहीं ही है ।

(ता.क. अभी उनको पूछा इसलिये पता चला कि कपडा विगैरह दबाकर भी कभी भी पसीना पोंछते नहीं है ।)

सिर्फ गरमी विगैरह में बहुत पसीना आ गया हो तो उस समय 'मांडली की गोचरी

के पात्रे में गिरे नहीं' उसके लिये ऊँगली से लेकर ऊँगली कपडे से पोंछ देते हैं । इससे पसीना तो नहीं पोंछा हुआ कहा जाता पर टपकता अटक जाये बस! इतना आवश्यक होने से करते हैं ।)

इसका कारण भी बता देता हूँ ।

यदि कपडे से घिसकर पसीना पोंछे, तो साथ में मैल भी निकल जाता है, तो कपडे मैल के कारण से मैले हो जाते हैं, तो उसका जल्दी काप निकालना पडता है । काप निकालना पडे उसके लिये भी यह मुनि पसीना घिसकर पोंछते नहीं है।

दूसरा मलपरिषद सहन करने की इनकी तीव्रतम भावना ! इसलिये जमा हुआ मैल कभी दूर नहीं करते ।

और तीसरी बात, धीरे-धीरे पोंछकर भी पसीना दूर करना यह एक शरीर की सार-संभाल ही कहा जाता है.. देहशुश्रुषा तो निषिद्ध ही है । इसलिये उपर उपर से भी कभी भी पोछते नही । इसलिये पसीने का कपडा एक्स्ट्रा रखना पडे यह बात तो मूल से ही साफ हो जाती है ना !

कैसी देहाध्यान को तोडने की लगन ।
कैसा देह से भिन्न अनुभव करने का लक्ष्य !!
कैसा स्वयं के देह के उपर भी निरपेक्ष भाव !!!

देखना, इनके शरीर को !
देखना, इनके पैरों को !
आपको अचंभा होगा !

सचमुच, शुद्ध निश्चय की प्राप्ति शुद्ध व्यवहार के बिना असंभव ही है - वह शास्त्रवचन साक्षात् चरितार्थ होता है !!!

✻ ✻ ✻ ✻ ✻

(8) वे लोच साधु भगवंत के पास ही कराते हैं, गृहस्थ के पास नहीं और उसमें जिस राख का उपयोग होता है, वह भी निर्दोष प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, अर्थात् जहाँ लकडे से रसोई बनती हों, छान से (गाय के गोबर) से रसोई बनती हो ऐसे कोई घरों में से या दूसरे कहाँ से राख लेकर आते हैं, उसे छानकर लोच के लिये उसका उपयोग कराते हैं ।

आगे..

लोच के वक्त खून निकले, तो उसको अटकाने के लिये हम राख का उपयोग करते हैं । उसके उपरांत उँगली सूखी रहे तो ही बाल पकड सकते हैं, ऊँगली यदि पसीने से गिली हों या खून से गिली हों, तो बाल हाथ में नहीं आते, छिटक जाते हैं । (ऐसे बाल भी यदि गिले रहे तो हाथ में नहीं आते, छिटक जाते हैं ।)

इसलिये भी राख का उपयोग करना पडे अब पसीना, राख सिर पर इकट्ठे हो, इसलिए राख चिपकती भी है इसलिये ही हम सिर धो देते हैं या गिले कपडे से पोंछ देते हैं । जिससे राख या उसके दाग रह ना जाये ।

पर यह हैमविजयजी !

नहीं तो सिर धोते हैं ।

नहीं तो सिर को गिले कपडे से पोछते हैं ।

नहीं तो सूखे कपडे से घिस-घिसकर राख को दूर करते हैं

खुद के ही बाल को हाथ में लेकर उसके उपर उपर से राख ले लेते हैं जिससे गृहस्थों को दिखने में अनुचित ना लगे ।

'मैं यह जो लिख रहा हूँ - यह सच ही है' - उसकी साबिती उनका मस्तक है । आप उनका सिर देखना । काले-काले दाग उनके सिर पर दिखेंगे.. यह सूचित करता है कि 'वे सिर धोते, पोंछते या सूखे कपडे से घिसकर साफ नहीं करते हैं ।'

''शरीरेणैव युध्यन्ते दीक्षापरिणतौ बुधाः'' अर्थात् सच्ची दीक्षा प्राप्त होने के बाद सच्चा श्रमण शरीर के साथ ही शुद्ध करते हैं और यह मुनि के जीवन में यह वस्तु एकदम स्पष्ट दिख रही है ।

(9) मैं इनको जड (पत्थर) की उपमा दूँ । इनको कुछ असर नहीं होती। मेरे पास 10-12 छोटे साधु पढे हैं, मेरा एक शिष्य भी है । फिर भी उन सबसे अधिक मैंने इनको कडक उपालंभ दिये हैं । पर इनको मेरे प्रति का बहुमान कभी कम नहीं हुआ । मैंने जाहिर में उनको उपालंभ दिये हैं मैंने जाहिर में ही उनको उनके दोष बताये हैं ।

तो भी 'विद्यागुरू' के प्रति का बहुमान जरा भी कम नहीं हुआ ।

वैसे इनकी प्रशंसा करूँ तो भी कभी वे फूलते नहीं हैं ।

आपको शायद ऐसा लगेगा कि - यदि यह मुनि इतने गुणियल हैं तो मैंने इनको क्यों उपालंभ दिये हैं ?

वह भी कह देता हूँ ।

इनके कारण मुख्यतया हो-

इनको पाठ में या उसके सिवाय भी झोंके बहुत आते हैं । इसका कारण तो उनके शरीर की प्रकृति ही इस प्रकार की है

वे दोपहर को आराम नहीं करते थे, मैंने चालू कराया.. फिर भी झोंके चालू रहे वे मच्छरदानी का उपयोग नहीं करते थे, मैंने चालू कराया, फिर भी झोंके चालू रहे । वे रूक्षभोजनवाले थे, मैंने लंबे समय तक स्निग्धभोजी बनाया..

फिर भी झोंके चालु रहे

.. इसलिये मुझे लगा कि .. 'इसमें इनका भयंकर निद्राकर्म का उदय काम कर रहा है ।'

पर मुझे चिंता यह हो रही थी कि - 'इसके कारण इनका अभ्यास बिगडेगा ।' इसलिये चालु पाठ में जब इनको झोंके आते, तब मैं इनको ठपका दे देता, सभी के बीच में थोडा जोर से कह देता ''जाओ 20 मिनिट सोकर आओ ।''

✻ ✻ ✻ ✻ ✻

(10) 98 डिग्री शरीर का तापमान नोर्मल गिना जाता है 99 से बुखार शुरू होता है 100 से हैरान होते हैं । 101-102 में तो दर्दी की हालत बिगड जाती है...

ये मुनिवर मेरे पास रहे, उस दौरान उनको प्रायः चार बार बुखार आया । (दो-तीन बार तो उतरने के बाद, बहुत दिनों के बाद मुझे उस बात का पता चला कि उनको बुखार आया था ।)

एक बार मुझे ख्याल है, वहाँ तक 101 डिग्री बुखार में वे पढ ही रहे थे, संथारे में लेटने की या पच्चक्खाण कम करने की, पारणा करने की कोई बात नहीं । किसी को पता ही नहीं चला कि 'उनको बुखार आया है ।'

दो-तीन दिन के बाद शाम को प्रतिक्रमण में अंत में 'शांति' अलग बोलकर वह बैठ गये तब मुझे पता चला कि इनकी कुछ तबियत बिगड गई है ऐसा लग रहा है । हमने देखा तो 102 बुखार ।

उन्होंने ही कहा - ''दो-तीन दिन से बुखार जैसा लग रहा था, आज थोडी अधिक सुस्ती लग रही हैं.. इसलिये...''

उसका मतलब स्पष्ट ही था कि दो-तीन दिन 1 डिग्री बुखार में वे गोचरी गये, पढे, सभी क्रिया अप्रमत्तता - संडासापूर्वक की । किसी को भी पता नहीं चलने दिया । उनको इंजेक्शन देने में आया, तो इंजेक्शन के उपर के काच को तोडने में आया, तो ऐसे बुखार में भी उन्होंने वह माँगकर ले लिया । जो स्पीरीटीवाली रूई घिसने में आई

थी, वह भी उन्होंने माँगकर ली । वह सब व्यवस्थित रीति से परठने के लिये ले लिया। इतने बुखार में भी यह सब कितनी सावधानी..

और बुखार बढ रहा था..

बाद में पता चला कि जहरी मलेरिया है ।

तो होस्पीटल में एडमीट होने की एकदम 'ना' । उपाश्रय में ही कम से कम बोटल चढाने पडे उस तरह डॉक्टर के साथ (माथाकूट) चर्चा करके आठ-दस के बदले 4-6 में काम पटाया । उन बोटलों का भी आगे-पीछे का पूरा वहीवट स्वयं ध्यान रखके करवाया !

---- यह सब 103-104 बुखार वाले जहरी मैलेरीया में !

डॉक्टर के लिये कितने फोन करवाने पडे ?

डॉक्टर कितने दूर से आये ? किसमें आये ?

डॉक्टर की बेटरी कितने समय तक चालु रही ?

----इतनी सब सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों का इन्होंने ध्यान रखा-आलोचना के लिये ही तो!

गुणगौरववंता

(1) अभ्यास करते वक्त 400-500 पेज की जाडी - बडी पुस्तक भी पूरी नहीं खोलते हैं । जिस तरह ठवणी के उपर रखा हुआ पुस्तक थोडा ही खुल्ला रहता है, वैसे वे ठवणी के बिना ही खुद के हाथ से पुस्तक को पकडकर रखते हैं ।

कारण ? उनकी भावना -'पूरी खोलुं, तो पुस्तक की सिलाई जल्दी ढीली पडती है, पुस्तक इतनी जल्दी फटती है। श्रुतज्ञान की सेवा तो नहीं कर सकता,परंतु कम से कम इतनी संभाल तो करूँ,तो भी ज्ञान की भक्ति हो जाये। उसमें कहाँ कुछ कष्ट लेना है

* * * * *

(2) मेरे तरफ भी उनकी आज्ञापारतन्त्य ऐसा कि..

- दीक्षा के बाद कभी भी मच्छरदानी का उपयोग नहीं करने पर भी दो-चार प्रसंगों में 'मच्छरदानी का उपयोग करो' ऐसे मैंने इच्छा प्रगट की तो तुरंत ही उन्होंने मच्छरदानी का उपयोग किया ।

हा ! 'भावतु हतु, अने वैद्ये कीधु' ऐसी भावना भी उनके मन में बिलकुल नहीं थी । इसलिए ही अमुक दिनों की परीक्षा के बाद जैसे मैंने ना कहा, कि तुरंत ही मच्छरदानी का त्याग ! और रीतसर वह त्याग करने का जबरदस्त आनंद ! मानो कि मच्छरदानी उनके लिये जेल की सजा थी और उसमें से उनको छुटकार मिला हो ।

- ऐसे ही बना था आयंबिल की ओली के लिए ! जो बात मैंने शुरूआत में ही कर दी थी ।

- हा ! इस तरह काप में भी.. मेरी निश्रा स्वीकारी, उसके बाद उनके पास 1/2 कपडे का वर्ष में 2 या कभी 3 बार भी काप निकलवाया है । मेरी आज्ञा होने से उन्होंने दो तीन बातों का पालन भी किया है ।

- ऐसे, पारणा के दिनों का कोटा (स्टॉक) पूरा होने के बाद भी दो - चार दिन या 8-10 दिन या 4-5 महीनों तक 'पारणा (एकासणा) ही करते हैं ऐसा मैंने बहुत बार कहा है ।'

तब अनिच्छा होते हुए भी.. पुन: आयंबिल के उपर चढ जाने की तीव्रतम तमन्ना होते हुए भी.. उनको सिर्फ 'आज्ञा का पालन करना वह सबसे पहली और प्रधान आराधना है' - ऐसा समझकर स्वस्थता से उसका पालन हर बार किया है । अभी भी

परीक्षा चालू ही है और वे पास होते ही रहे - हो ही रहे हैं !!

यह बहुत बडी **'इच्छानिरोधकी तपश्चर्या'** मुझे साक्षात्कार रूप से दिख रही है!

एकबार तो ओली के पारणे में 'पूरी दोषित गोचरी वापरनी है..' ऐसी कठिन परीक्षा भी कर ली और कोई भी विकल्प किये बिना उसका भी स्वीकार करके उनकी परिणति का परिचय भी दे दिया (जो कि ऐसा मैंने किया नहीं और संपूर्ण निर्दोष गोचरी, त्यागमय एकासणा से ही उनको पारणा करा लिया..पर उनकी पूरी तैयारी !!)

* * * * *

(3) राजकोट-चातुर्मास के बाद राजकोट छोडने के अंतिम दिन उन्होंने वडीलश्री पूज्य हंसकीत महाराज साहेब के पास अनुमति माँगी - 'आज गोचरी-मांडली में तमाम पात्रा-तरपणी विगैरह मैं धोऊँगा ।'

वडील ने उनकी भावना देखकर इजाजत दे दी ।

उस दिन बालमुनि के दीक्षा प्रसंग में संखडी थी, इसलिए पात्रा-तरपणी शायद कम धोने में आये थे, फिर भी (लगभग) कुल **12 पात्रा, 8 तरपणी, 3-4 चेतना, 8-10 टोक्सी, 2-3 ढक्कन विगैरह** इन्होंने धोये (वापरने वाले साधु थे 14) साधुओं ने जो पात्रे वापरने के लिए दिए थे, वह तो धो नहीं सकते, पर इसके सिवाय सब इन्होंने धोया, सब पानी उन्होंने वापर लिया ।

उनको था एकासणा, पर आयंबिल वाले महात्माओं के भी सभी एक्स्ट्रा पात्रा-तरपणी विगैरह सब इन्होंने ही माँगकर ले लिये ।

सिर्फ पात्रा-तरपणी धोने में, पोंछने में, पानी वापरने में उनको एक-डेढ घंटा लगा ।

* * * * *

(4) मुहपत्ति का उपयोग अजोड, अद्वितीय ! चाहे जितनी जल्दी हो, मुख पर मुहपत्ति लाये बिना एक भी शब्द नहीं उच्चारते ।

उदा.

पाठ में अचानक इनको बोलने के लिए कहूँ, तो ओधे पर रही हुई मुहपत्ति हाथ में लेकर मुँह पर बराबर लगाकर ही बोलना शुरू करते हैं ।

- चालू पाठ में मैं कोई प्रश्न पूछुं, तो उपर के मुताबिक मुहपत्ति का उपयोग लाकर ही बोलते हैं (मुहपत्ति हाथ में हो और प्रश्नोत्तरी चलती हों तो तो प्रश्न ही नहीं

है। यह तो मैं ही बोलता हूँ, वे तो सिर्फ सुनते ही हैं और बीच में मैं कुछ पूछूँ.. तब की बात है।

- चालू पाठादि में उनको स्वयं कुछ पूछना हो या बोलना हों, तो भी पद्धति का तो उपर के मुताबिक ही !

सार,

चार वर्ष के दौरान मैंने अभी तक तो ऐसा देखा नहीं है कि 'वे मुहपत्ति के उपयोग बिना बोले हों.'

विहार में मेरे साथ बातें करते चलते हैं (उनको जो कि इष्ट ना हों पर मुझे कुछ बात करनी हो इसलिए दाक्षिण्य-विनय को आगे करके बात करते भी हैं-पर वह अपवाद मानकर ही) तो भी मुहपत्ति तो होती ही है। गोचरी मांडली में कोई चर्चा-विचारणा चले तो भी मुहपत्ति तो होती है

ऐसा भी नहीं कि 'मुहपत्ति की जगह हाथ को मुँह के आगे रखके या कपडे को ही मुँह के आगे रख कर बोलते हैं।'

नहीं ! मुहपत्ति यानि मुहपत्ति ही ! और यही सच्ची विधिहै । जो उपकरण जिसके लिए दिया है, उस उपकरण का उसके स्थान पर उपयोग होना ही चाहिए और उस उपकरण का ही होना चाहिए।

मुहपत्ति के उपयोग के लिए कैसा दृढ प्रणिधान कि किसी भी परिस्थिति में भी एकाद शब्द भी प्रमाद के कारण से मुहपत्ति के बिना बोल ना दे ! उसकी सतत जागृति रखते हैं।

* * * * *

(5) उनकी भाषासमिति की एक विशिष्टता....

जब भी वे खुद से एक दिन भी बडे महात्मा का नाम उच्चारते हैं तब अवश्य आगे '**पूज्य**' शब्द बोलते हैं, फिक्स बोलते ही हैं।

अब तक.. बातचीत में उनके मुँह से बहुत बार छोटे-बडे वडीलों के रत्नाधिकों के नाम सैकडों बार सुने हुए हैं, पर एक भी बार उनके मुँह से उनसे बडे महात्मा का नाम '**पूज्य**' शब्द के बिना सुना नहीं है। वे वडील भले तपस्वी ना हों, ध्यानी-ज्ञानी-स्वाध्यायी-लेखक-प्रभावक कुछ ना हों, तो भी उनके लिए '**पूज्य**' शब्द का प्रयोग अवश्य करते ही हैं। यह उनकी दृढता, उपयोग में सावधानी, महात्माओं के प्रति सद्भाव को सूचित करता है।

दूसरा.. वैसे भले दीक्षापर्याय में उनसे छोटे हो, पर 'अतिविशिष्ट संयम के परिणाम' विगैरह कोई विशिष्ट गुणवत्तावाले महात्मा हों अथवा तो उनको कोई एकाद विशिष्ट पाठ दिया हो यानि कि उनके 'विद्यागुरू' बने हों तो उन सबके पहले **'पूज्य'** का प्रयोग आ ही जाता है । उदा. पूज्य यशरत्न महाराज, पूज्य शीलरक्षित महाराज विगैरह..

और एक ऐसी खासियत है कि एकदम नूतन दीक्षित से लेकर बहुत बडे पर्यायवाले महात्मा तक कोई भी साधु भगवंत हों या कोई भी साध्वीजी भगवंत हो.. किसी का भी नाम शोर्ट फोर्म में नहीं ही बोलना ।

उदा. 'परिणतिधनसुंदरसागरजी' या 'शमभावरतिवल्लभविजयजी' ऐसा कोई बडा नाम भी हों.. तो भी '..सुंदरसागरजी' या 'वल्लभविजयजी' यह सब तो पूरे ग्रुप में सभी को एक जैसा ही होता है - ऐसा करके सिर्फ 'परिणति-धनमहाराज' या 'शमभावरतिमहाराज' इस तरह शॉर्ट कभी नहीं बोलते ।

हम तो एकदम छोटा नाम हो तो भी आगे या पीछे का ही नाम बोलते हैं उसमें आते एक जैसे शब्दों को जाने देनेवाले की आदत वाले होते हैं । उसमें - 'गुरुतत्व नाम के मान की हानि होती है...' ऐसा मानकर ये मुनि तो संपूर्ण नाम ही बोलेंगे ।

* * * * *

(6) ये वर्ष में एक बार ही आलोचना लेते हैं, पर मुझे लगता है कि उनके जैसी सूक्ष्मतम आलोचना कदाचित् कोई भी नहीं लेते होंगे । यह सिर्फ लिखने के लिए नहीं लिखता, पर यह हकीकत है ।

कारण ? पूरे भव के पापों की आलोचना लिखने में बहुत पन्ने या बुक भरती है यह तो समझे, पर इतना अच्छा जीवन जीनेवाले.. उनकी हर वर्ष की आलोचना की बुक कम से कम 200 (फुलस्केप) पन्ने जितनी भरती है..., उसमें अक्षर एकदम छोटे.. और पेरेग्राफ बिना का लेखन ।

यह कैसे दिमाग में बैठता है ?... मुझे खुद पर गुस्सा आया कि 'पूरा दिन आलोचना लिखने का एक ही कार्य करे तो भी 20-25 दिन तो इनको आलोचना लिखने में ही दिन पसार हो जाते हैं । पर आलोचना ग्राहक आचार्यदेवश्री और उनके गुरूदेव दोनों ने कहा कि 'तुम्हारे लिए यह भी सुंदर आराधना ही है, इसलिए तुम लिखो, दिन-समय की तरफ लक्ष्य नहीं देना ।''

किसी की आलोचना हम पढ नहीं सकते, बाकी यदि उनकी आलोचना पढने हेतु मिले तो प्रत्येक संयमी को ख्याल आये कि दोषों का स्वीकार किस तरह से करना चाहिए? दोषों की पेशकश किस तरह करते हैं ? सरलता किस प्रकार की होती है ?!!

उपसंहार

बस,

याद करने बैठूँगा, तो और कम से कम 25-30 मुद्दे याद आयेंगे ।

पर अब विचार करके, लिखकर थका हूँ । इसलिए अब विचारना बंद कर रहा हूँ ।

(नोंधः उनको व्यक्तिगत मिलोगे, जिज्ञासा व्यक्त करोगे, तो संयम संबंधी और ढेर सारी सूक्ष्मतम संभाल,शास्त्र सापेक्ष पदार्थ-माहिती विगैरह बहुत बहुत प्राप्त होगा।)

हर वर्ष चातुर्मास के बाद मुझे भय रहता कि 'उनके गुरूदेव उनको पुनः बुला लेंगे।'

मेरा कायदेसर तो हक है ही नहीं कि उनको रोक सकूँ ...

जब उनके गुरु ने मेरे पास रखा तब मुझे ऐसा लगा था कि **'उनके गुरू को खुद के शिष्य को पढाने हेतु मेरी गरज है, मैं उपकार कर रहा हूँ ।'**

पर उसके बाद तो हरेक चातुर्मास में मुझे ऐसा लगता है कि- **'मुझे उनके और उनको मेरे पास रहने देने की उनके गुरू की गरज है ।**

इसलिए ही तो मुझे भय लगता कि - 'उनके गुरू...'

फिर भी हर वर्ष मैं लिखता रहा.. कि मेरे पास रहे तो मुझे विशेष आनंद है । पर आपको पुनः बुला ही लेना हो तो बुला सकोगे ।.'

इस वर्ष चातुर्मास के बाद मैंने आचार्यदेव को बताया कि-

"मैंने इनको पढाया है, तो मैं विद्यागुरू हूँ । गुरू को गुरूदक्षिणा तो देनी ही पडती है ना ?" उस गुरूदक्षिणा में मैं उनको ही माँग लेता हूँ । उसके बदले में मेरे पास भविष्य में जितने भी मुमुक्षु आयेंगे, उन सभी को आपको देने के लिए तैयार हूँ ।"

यह मुनिराज हैमविजयजी मेरे लिए श्रीकृष्ण है, उनके सामने ढेर सारी मुमुक्षुरूपी पूरी यादवसेना गँवानी पडे तो मुझे मंजूर है ।

जो कि मुझे पता ही है कि इस तरह मुझे इस मुनिराज को मेरे पास नहीं रखना है । उनके गुरूदेव 'हाँ' कहे, तो भी नहीं रखना । अवसर आयेगा, तब उन्हें वापस भेजना

ही है।

पर... मेरी उनके लिए भावना क्या है ? मुझे उनसे कितना संतोष है.. यह उनके गुरूजी को स्पष्ट ख्याल आये, उसके लिए मैंने यह रजुआत की है।

* * * * *

प्रभु महावीर को पूछने में आया और प्रभुवीर ने जवाब दिया **'चौदह हजार में श्रेष्ठ धन्ना अणगार !'**

इस काल में **अप्रमाद, सूक्ष्म उपयोग** की दृष्टि से यह मुनिराज को कदाचित् ऐसे धन्ना अणगार कह सकते हैं

हा ! उनसे अधिक श्रेष्ठ संयमी भी हो सकते हैं... यह तो मुझे जो दिखने को मिले, उन सबमें यह श्रेष्ठ लगे - यह पक्की बात है।

इनके जैसे या इनसे भी अधिक श्रेष्ठ कोई मुनिवर दिखे, तो उनका जीवन निश्चित मुझे बताना, मुझे और अनुमोदना करने का लाभ मिलेगा...

और - हाँ ! दूसरी बात

यह मुनिराज छद्मस्थ है, इसलिए उनमें दोष होंगे ही, है ही। और सतत् साथ में रहने से उन दोषों का मुझे ख्याल भी आया है। पर अवगुणों को ढँककर गुण गाने... यह तो सम्यक्त्वी का आचार है। **'गुणथुति अवगुण ढांकवाजी..'** ये शब्द समकित के 68 बोल की सज्झाय में भी दिखने में आये हैं ना !

इसलिए कल यदि आपको इन मुनि का परिचय हो और उनके दोष दिखने को मिले तो... 'दोषदृष्टि प्राप्त करने के बदले गुणदृष्टि प्राप्त करना ऐसी नम्र विनंती!'

हा !

एक बात खास ध्यान में लेना

'जो ऐसा जीवन जीते हैं, वे साधु ही नहीं हैं।' ऐसा उल्टा मत पकडना यह मुनि 90% से पास हुए हैं, तो दूसरे संयमी 35% से लेकर 89% तक भी पास ही कहलाते हैं। और 90% से भी अधिक संयमीओं की बात ही कहाँ करनी ?

किसी को उनके दर्शन की भावना हो, तो हाल तो मेरे साथ होने से खुशी से उनके दर्शन का लाभ ले सकोगे।

इन मुनि के गुणों को चाहकर हृदय को पवित्र करें,
इन मुनि के गुणगान करके जीभ को पवित्र करें,

इन मुनि के दूसरे भी विशिष्ट प्रसंगों को सुनकर कान को पवित्र करें,
इन मुनि के दर्शन के लिए कदम बढाकर पैरों को पवित्र करें,
इन मुनि के दर्शन करके आँखों को पवित्र करें,
इन मुनि के चरण स्पर्श करके हाथ को पवित्र करें,
और यदि सामर्थ्य प्रगटे, सव प्रगटे तो इन मुनि के शिष्य...
बनकर जीवन को पवित्र करे ।

श्रुत - सारथी

पू.सा. अनन्तकीर्ति श्री जी म.सा. के शिष्या
जिनदर्शना श्री जी म.सा. की प्रेरणा से

**स्वर्गस्थ लीलावतीबहन
कँवरलाल पारख**
(अहमदाबाद)

2500 साल पहले हुए और प्रभु के
मुख से प्रशंसा पानेवाले धन्ना अणगार
की यह story नहीं है, परंतु वर्तमान में जी
रहे एक महामुनिवर का यह आदर्शजीवन है...

सभी संयमीओ को और गृहस्थो को एक विनंति...

इस पुस्तक को पढने के बाद यदि
इस संयमी की सच्ची अनुमोदना करने
का मन हो, तो मात्र एक काम करना

आपके जीवन में मजबुत नियमों को धारण
करना, और प्राप्ति स्थान के पते पर एक
पत्र में उसको लिखकर भेजना.....

इस पत्र को पढ़कर धन्नाजी को
भी बहुत-बहुत आनंद होगा....

धन धन्नो अणगार

Divyam Graphics